साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र

खेती संदेश

मूल्य : 6/- रुपए

All Subject to Patiala Jurisdiction.

WEEKLY KHETI SANDESH

E-mail : khetisandesh2025@gmail.com

RNI Regd. No. PBBIL/25/A0210 • Chief Editor : Parminder Kaur • Issue Dt. 10-11-2025 • Vol.1 No.12 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • Mob. 90410-14575 • Page 12

खतरनाक एफ्लाटॉक्सिन की वजह से

भारत की मूंगफली पर इंडोनेशिया का प्रतिबंध

इंडोनेशिया की क्वारंटाइन अथॉरिटी के मुताबिक, भारतीय मूंगफली में एफ्लाटॉक्सिन नामक जहरीले पदार्थ की मात्रा तय मानकों से कहीं अधिक पाई गई है।

कई बार मूंगफली खाते समय एक कड़वा दाना मुंह में आ जाता है। यही कड़वाहट एफ्लाटॉक्सिन की वजह से होती है, जो एक खतरनाक कार्सिनोजन (कैंसर पैदा करने वाला पदार्थ) है।

क्या है एफ्लाटॉक्सिन?

एफ्लाटॉक्सिन एक जहरीला यौगिक है, जो ऐस्परजिलस फ्लेवस और ऐस्परजिलस पैरासिटिकस नामक फफूंद से पैदा होता है। यह फफूंद गर्म और नमी वाले वातावरण में मूंगफली, मक्का, अनाज और मेवों को संक्रमित कर देती है।

दिखता नहीं है, पर खतरनाक हैरू एफ्लाटॉक्सिन फंगल अवशेष नंगी आंखों से दिखाई नहीं देता और केवल टेस्ट द्वारा ही पहचाना जा सकता है।

कैंसर का कारण : भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. शंकर लाल जाट बताते हैं कि एफ्लाटॉक्सिन कार्सिनोजेनिक है और यह लिवर कैंसर का कारण बन सकता है।

जीन को नुकसान : यह जीनोटॉक्सिक भी है, यानी यह इंसान के जीनोम को नुकसान पहुंचा सकता है।

क्यों और कैसे होती है मूंगफली दूषित?

टीएनबी कॉलेज के बॉटनी विभाग के प्रोफेसर डॉ. एच.के. चौरसिया के शोध के अनुसार, पहले यह माना जाता था कि अवैज्ञानिक तरीके से भंडारण के कारण मूंगफली खराब होती है, लेकिन शोध में पाया गया कि खेती के दौरान ही फसल में अफ्लाटॉक्सिन की समस्या हो जाती है।

मूंगफली की जड़ में पाई जाने वाली धागानुमा रचना में संक्रमण होने से यह विषैला फफूंद विकसित होता है। जब कोई दाना कड़वा लगे, तो समझ लेना चाहिए कि वह एफ्लाटॉक्सिन से संक्रमित है।

क्या हैं समाधान के रास्ते?

इस समस्या से निपटने के लिए वैज्ञानिक बायोलॉजिकल कंट्रोल जैसे तरीके सुझाते हैं।

डॉ. चौरसिया के शोध के अनुसार, मूंगफली के राइजोस्फेयर से 22 विभिन्न जीवाणुओं को अलग करके उन्हें माइक्रोमेथड द्वारा पौधों में इंजेक्ट किया गया।

इससे पैदा हुई मूंगफली में अफ्लाटॉक्सिन की मात्रा नगण्य पाई गई। विकसित देशों के किसान फसलों को अफ्लाटॉक्सिन से बचाने के लिए बायोलॉजिकल कंट्रोल का खूब इस्तेमाल कर रहे हैं।

भारतीय निर्यात पर चोट

इंडोनेशिया का यह प्रतिबंध भारतीय मूंगफली निर्यात के लिए एक बड़ा झटका है। व्यापारिक सूत्रों का कहना है कि समस्या टेस्टिंग लैब्स में है, जो कई बार छोटे कमरों में बिना उचित उपकरणों के स्थापित की गई हैं। खबरों के मुताबिक, इंडोनेशियाई अधिकारियों ने चेन्नई की एक लैब के काम करने के तरीके पर चिंता जताई थी। इंडोनेशिया का प्रतिबंध भारतीय कृषि निर्यात के लिए एक चेतावनी है। उत्पादन से लेकर निर्यात तक, गुणवत्ता नियंत्रण पर सख्ती जरूरी है। किसानों को जागरूक करना और एफ्लाटॉक्सिन मुक्त फसल उगाने के आधुनिक तरीकों को अपनाना ही इस समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है। एक कड़वे दाने ने न सिर्फ सेहत के खतरे की ओर इशारा किया है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय व्यापार में भारत की साख को भी चुनौती दी है।

रबी सीजन की बुवाई में 15 प्रतिशत की बढ़ोतरी, गेहूं और चना की बुवाई में तेजी

भारत में रबी सीजन 2025 की शुरुआत मजबूत रही है। कृषि मंत्रालय द्वारा जारी ताजा रिपोर्ट के अनुसार, 31 अक्तूबर 2025 तक देश में रबी फसलों की बुवाई का कुल क्षेत्रफल 76 लाख हैक्टेयर तक पहुंच गया है, जो पिछले वर्ष की इसी अवधि के 66 लाख हैक्टेयर की तुलना में 15 प्रतिशत अधिक है। यह वृद्धि मुख्य रूप से गेहूं, चना और तिलहन

जैसी फसलों के विस्तारित क्षेत्र के कारण हुई है। मंत्रालय ने कहा है कि इस बार की बुवाई का रुझान ग्रामीण अर्थव्यवस्था और कृषि क्षेत्र दोनों के लिए सकारात्मक संकेत दे रहा है। गेहूं की बुवाई में उल्लेखनीय तेजी देखी गई है। 31 अक्तूबर तक कुल 3.3 लाख हैक्टेयर में गेहूं की बुवाई पूरी हो चुकी है, जबकि पिछले वर्ष यह रकबा 2.3 लाख हैक्टेयर था। इसका मतलब है कि गेहूं का रकबा इस वर्ष लगभग 43 प्रतिशत बढ़ा है। कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि यह वृद्धि समय पर हुई वर्षा, बेहतर नमी और अनुकूल तापमान के कारण संभव हुई है। उत्तर भारत के प्रमुख गेहूं उत्पादक राज्यों - पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में इस बार बुवाई की रफ्तार सामान्य से पहले शुरू हुई है।

चना की बुवाई भी उत्साहजनक रही है। इस वर्ष 31 अक्तूबर तक चना 14.9 लाख हैक्टेयर में बोया गया, जबकि पिछले वर्ष यह क्षेत्रफल 12.1 लाख हैक्टेयर था। यानी लगभग 23 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। इसी तरह मसूर (लेंटिल) की बुवाई 1.9 लाख हैक्टेयर से बढ़कर 2.6 लाख हैक्टेयर तक पहुंची है। इन दोनों प्रमुख दालों को मिलाकर दलहन फसलों का कुल रकबा 20.8 लाख हैक्टेयर तक पहुंच गया है, जो पिछले वर्ष के 16.5 लाख हैक्टेयर की तुलना में लगभग 26 प्रतिशत अधिक है। कृषि मंत्रालय के अनुसार, दालों की बुवाई में यह तेजी इस बार के बेहतर बीज वितरण कार्यक्रमों, समय पर नमी उपलब्धता और किसानों की बढ़ती दिलचस्पी का परिणाम है।

तेलहन फसलों की बुवाई में भी उल्लेखनीय उछाल देखने को मिला है। मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, 31 अक्तूबर 2024 को तिलहन फसलों का कुल बुवाई क्षेत्र 37.42 लाख हैक्टेयर था, जो इस वर्ष बढ़कर 42.33 लाख हैक्टेयर तक पहुंच गया है। यानी 4.91 लाख हैक्टेयर की वृद्धि दर्ज की गई है, जो लगभग 13 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाती है। इस वृद्धि का श्रेय सरसों, राई और अलसी जैसी फसलों की बढ़ती मांग और सरकार की प्रोत्साहन योजनाओं को दिया जा रहा है।

किसानों के हित में जारी

बीजोपचार

अच्छी फसलों का मूल आधार

बीजोपचार के लाभ

- ★ अधिक अंकुरण
- ★ अधिक प्रबल पौधे
- ★ आरंभिक बिमारियों का प्रभावी नियंत्रण
- ★ स्वस्थ पौधों की संख्या ज्यादा

देश के सभी किसान, पढ़ें होकर होशियार

अच्छी पैदावार तभी होगी, जब बीजों का हो सही उपचार

खुम्ब को पौष्टिकता, औषधीय गुणों व आय के उत्तम साधन के रूप में विश्व भर में 100 से अधिक देशों द्वारा इसका उत्पादन किया जा रहा हैं। विश्व के कुल खुम्ब उत्पादन 36 मिलियन (3.6 करोड़ मीट्रिक टन) का 70 प्रतिशत (25–26 मिलियन 2.5–2.6 करोड़ मीट्रिक टन) से अधिक चीन में पैदा हो रहा है, जबकि भारत में यह मात्र 5 लाख टन है। खुम्ब की खपत विश्व में 2–3 कि.ग्रा. चीन में 10–12 कि.ग्रा., जबकि भारत में यह मात्र 40–50 ग्राम प्रति व्यक्ति है। भारत में 20 तरह के खुम्ब की खेती की जा रही है, लेकिन 80–90 प्रतिशत हिस्सा श्वेत बटन खुम्ब का है।

पौष्टिकता में अव्वल है खुम्ब

खुम्ब एक प्रकार की फफूंद है, इनमें से अनेक फफूंद चिरकाल से खाने के लिए इस्तेमाल की जा रही हैं, हालांकि कुछेक खुम्ब जहरीली भी होती हैं। विश्व भर में खुम्ब के स्वाद एवं प्रभावी पोषक तत्वों का आनन्द लिया जाता है। किसी भी खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता उसमें मौजूद पौष्टिक तत्वों के कारण होती है। इसलिए सर्वसाधारण लोगों को खुम्ब के बारे में अवगत कराना अत्यावश्यक है।

मानव शरीर में कॉलेस्ट्रॉल को कम करने के साथ-साथ खुम्ब गठिया, खून की कमी, बाल, नाखून तथा दांत की सुरक्षा, हड्डियों की मजबूती, कैंसर से सुरक्षा, शरीर में इंसुलिन की मात्राा की विनियमित तथा रक्तचाप को नियंत्रण करने में सहायता करते हैं। खुम्ब में प्रचुर मात्रा में पाच्य रेशा भी पाया जाता है, जो कि कब्ज जैसे विकारों को दूर करने में मदद करता है। खुम्ब की विभिन्न प्रजातियों में पाए जाने वाले पोषक तत्व सारणी-1 में दिए गए है। शरीर की रोगरोधक क्षमता को बढ़ाने में खुम्ब का विशेष महत्व है। दैनिक व्यंजनों में खुम्ब को मिलाकर महत्वपूर्ण तत्वों जैसे नियासिन, सेलेनियम, राईबोलेविन, पैंटोथैनिक एसिड, विटामिन डी इत्यादि की कमीं को पूरा किया जा सकता है। खुम्ब एक सम्पूर्ण, पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्द्धक आहार है, जिसके उपयोग से अनेक प्रकार के विकारों व व्याधियों को कम किया जा सकता है। मासनव शरीर के तंत्रिका-तंत्र को सुचारू रूप से चलाने व मजबूती प्रदान करने में खुम्ब महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खुम्ब में सब्जियों से अधिक प्रोटीन पाया जाता है। यह प्रोटीन 20 से अधिक अमीनो अम्लों से मिलकर बनता है, इनमें से 9 को आवश्यक अम्ल माना जाता है, क्योंकि इनका मानव शरीर में उत्पादन नहीं होता है। खाद्यानों जैसे गेहूं, चावल तथा दानों में क्रमशः लाईसीन, ट्रिप्टोफेन, मिथियोनीन तथा सिस्टीन की कमी पाई जाती है, जबकि खुम्ब में ये सभी आवश्यक अमीनो अम्ल प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। कैंसर प्रतिरोधी क्षमता, खून में कॉलेस्ट्रॉल कम करना, खून में शर्करा घटाना रक्तचाप नियंत्रित करना इत्यादि खुम्ब, के विशेष गुण हैं। खुम्ब विटामिन डी का एक प्राकृतिक स्त्रोत है, जो कि स्वस्थ हड्डियों तथा दांतों के लिए आवश्यक है।

खुम्ब प्रोटीन, खासकर लाईसीन का एक मुख्य स्त्रोत है, जिसके द्वारा भारत जैसे विकासशील आनाज आधारित देश में कुपोषण की समस्या को कम किया जा सकता है। कम वसा होने के कारण दिल के मरीजों के लिए यह एक अति उत्तम आहार पाया गया है। यह कम कैलोरी, उच्च प्रोटीन, न के बराबर स्टार्च व शर्करा के कारण मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ है।

विटामिन बी-12 तथा फोलिक एसिड, जो कि शाकाहारी भोजन में नहीं पाए जाते, खुम्ब में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। ये इसके साथ ही लौह की अधिकता के कारण खून में हीमोग्लोबिन को बनाए रखने में सहायता करते हैं। रेशे व क्षारीय तत्वों की अधिकता के कारण खुम्ब ऐसे लोगों के लिए वरदान हैं, जो कि एसिडिटी व कब्ज की समस्या से परेशान रहते हैं। हालांकि अनेक सब्जियों में भी विटामिन पाए जाते है, लेकिन पानी में पकाते समय ये प्राय: नष्ट हो जाते है, जबकि खुम्ब को बिना पानी के ही पकाया जाता है, जिसके कारण मूल्यवान विटामिन बने रहते हैं। प्रति-ऑक्सीकारक जैसे सेलेनियम तथा इर्गोथायोनीन शरीर में बनने वाले स्वतंत्र कणों को बाहर निकालने में सहायक।

भारतीय भोजन, मुख्यत: आनाज आधारित, जिसमें, गेहूं, चावल तथा मक्का इत्यादि शामिल किए जाते है, में प्रोटीन की कमी पाई जाती है। कुपोषण से ग्रस्ति बड़ी जनसंख्या के भोजन में प्रोटीन की कमी को पूरा करने तथा स्वास्थ्य को सुधारने में खुम्ब एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। पुराने समय में सुम्ब धनाढ्य लोगों के आहार का मुख्य घटक था। इसके असीम गुणों तथा स्वास्थ्य को ठीक रखने के कारण आज यह जनमानस के खाने का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। खुम्ब में पाए जाने वाले तत्व मानव शरीर से विषहरण करने में भी सहायता करते है। पति ऑक्सीकारक तत्वों की वजह से मानव शरीर के उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को नियंत्रित करने में भी खुम्ब का विशेष योगदान है। स्वस्थ आंखों, गुर्दे, मज्जा, जिगर तथा चर्म इत्याद के लिए खुम्ब का सेवन अति आवश्यक है।

खुम्ब की निधानी आयु साधारण तापमान पर अल्पावधि, मुश्किल से 24 घंटे की होती है। इस दौरान ये बड़ी शीघ्रता से खराब होने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकों को भारी नुक्सान उठाना पड़ता है। भारत में इस उभरते नवोदित उद्योग की सफलता के लिए यह अति आवश्यक है कि नुक्सान को कम किया जाए ताकि यह पौष्टिक आहार अधिकाधिक उपभोक्ताओं तक पहुंच सके। ताजे खुम्ब की शरीर क्रिया एवं जैव-रासायनिक क्रिया में बदलाव, डिब्बाबंदी एवं भडारण तथा मूल्यवर्द्धन तकनीकों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। हालांकि हमारे देश में खुम्ब उत्पादन उस स्तर तक नहीं पहुंचा है तथा इसका उपयोग उत्पादन के साथ-साथ ही

शेष पृष्ठ 8 पर

सारणी 1. खुम्ब में पोषक तत्वों की उपलब्धता (प्रति 100 ग्राम)

पोषक तत्व	खुम्ब			
	श्वेत बटन	ब्राउन बटन	ऑयस्टर	शिटाके
पानी की मात्रा (प्रतिशत)	91.3	91.7	89.2	78.8
भस्म (प्रतिशत)	0.85	0.95	0.62	1.36
प्रोटीन (प्रतिशत)	1.23	1.29	0.46	0.89
कार्बोहाईड्रेट्स (प्रतिशत)	6.46	5.98	6.30	17.62
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	30.86	25.85	39.27	72.79
रेशा (प्रतिशत)	20.90	22.40	34.10	28.80
वसा (प्रतिशत)	1.6	1.4	1.1	1.2
विटामिन डी (आईयू/ग्राम)	984	885	487	205
सोडियम (मि.ग्रा. /कि.ग्रा.)	502	478	209	83
पोटेशियम (प्रति.)	402	4.0	2.7	2.1
लौह (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	86	82	183	38
मैंगनीज (मि.ग्रा./ कि.ग्रा.)	8.0	7.6	7.0	17.5
जिंक (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	80.0	74.0	162.2	90.0
सेलेनियम (मि.ग्रा./ कि.ग्रा.)	1.3	–	–	–

क्यों महत्वपूर्ण है खुम्ब

खुम्ब की बड़े पैमाने पर सरहना व केवल इनके पोषक तत्वों के कारण होती है, बल्कि ये जानवरों, दालों तथा खाद्यान्नों में पाए जाने वाले तत्वों की पूर्ति भी करते हैं। इन्हें सब्जी संसार का मांस कहा जाता है। ये अंधेरे, सीलन वाली जगहों तथा खाद्य स्त्रोत के ऊपर पाए जाते हैं। इनका उपयोग विश्व के सभी स्थानों तथा व्यंजनों में किया जाता है। खुम्ब पोषक तत्वों की खान है, जिसमें अनेक कार्बोहाईड्रेट्स, प्रोटीन, वसा, विटामिन, प्रति-ऑक्सीकारक के अलावा सेलेनियम, कॉपर, पोटेशियम प्रचुर मात्रा में तथा लौह, मैग्नीशियम, जिंक व मैगनीज कम मात्रा में पाये जाते हैं। यह कम ऊर्जा का स्त्रोत है, जिसमें पानी (90 प्रतिशत), शुष्क अवयन (10 प्रतिशत), वसा (0.6 प्रतिशत), प्रोटीन (2.5-3.0 प्रतिशत), कार्बोहाईड्रेट्स (4-6 प्रतिशत), रेशा (1.0 प्रतिशत) तथा भस्म (1.0 प्रतिशत) पाए जाते हैं।

खुम्ब में विशेष पोषक तत्व

थायमिन :- यह विटामिन कार्बोहाईड्रेट्स से निकलने वाली ऊर्जा को नियंत्रित करके दिमग व तंत्रिका-तंत्र के साधारण कार्य में सहायता करता है।

नियासिन :- प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाईड्रेट्स से निकलने वाली ऊर्जा पर नियंत्रण जिसके कारण पाचक-तंत्र व तंत्रिका-तंत्र को अच्छी हालत में रखने में सहायक।

राईबोफ्लेविन :- स्वस्थ लाल कणिकाओं, अच्छी दृष्टि व स्वस्थ त्वचा रखने में सहायक।

बायोटिन :- प्रोटीन तथा कार्बोहाईड्रेट्स के चयापचय में सहायक।

पैंटोथैनिक एसिड :- मानव शरीर में हार्मोन बनाने में सहायक।

फोलेट :- रीढ़ की हड्डी में बनने वाली लाल तथा श्वेत कणिकाओं की वृद्धि तथा विकास में सहायक।

चना फसल में कीट एवं बीमारियों के नियंत्रण हेतु अपनाए जाने वाले उपाय

आर. एस. चौहान, नरेन्द्र सिंह, गजेन्द्र सिंह एवं
मनोज बुसवाल, कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकूला,
चौ.च.सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (मो. 94162–44487)

दलहनी फसलों में चना एक प्रमुख स्थान रखता है। हरियाणा राज्य में इसका प्रमुख रूप से उत्पादन हिसार, भिवानी और महेन्द्रगढ़ जिलों में किया जाता है। यद्यपि चने की औसत पैदावार अपेक्षाकृत कम पाई जाती है, फिर भी इसमें 17 से 25 प्रतिशत तक प्रोटीन की मात्रा विद्यमान होती है, जिसके कारण इसे मानव आहार में प्रोटीन का एक श्रेष्ठ स्रोत माना गया है।

किसी भी फसल की उत्पादकता को प्रभावित करने में कीटों और रोगों की महत्वपूर्ण भूमिका देखी जाती है। यदि किसानों को इन कीटों और बीमारियों के लक्षणों तथा हानि पहुंचाने की प्रवृत्ति की सही जानकारी समय पर उपलब्ध हो, तो

उपयुक्त प्रबंधन उपाय अपनाकर फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

बीमारियों की रोकथाम

1. उखेड़ा :– यह रोग प्रायः रेतीली मिट्टी व शुष्क क्षेत्रों में अधिक होती है। बिजाई के लगभग 3–6 सप्ताह बाद रोगग्रस्त पौधों की पत्तियां मुरझाकर लुढ़क जाती है, परन्तु उनमें हरापन बना रहता है। तनें को चाकू से लम्बाई में काटने पर अन्दर से इस वाहिकी काली या भद्दे रंग की दिखाई देती है।

रोकथाम : हालांकि उखेड़ा रोग के लक्षण लवणता, भूमि में कम नमी तथा दीमक के आक्रमण द्वारा भी हो सकते हैं। इसलिये उपचार से पहले इन कारणों की जांच करना अति आवश्यक है। उखेड़ा रोग की रोकथाम के लिये भूमि में नमी बनाएं रखें तथा 10 अक्तूबर से पहले बुवाई न करें। उखेड़ा रोगरोधी किस्में एच–208, चना नं. 1, चना नं. 3 व हरियाणा चना नं. 5 की बिजाई न करें। बीज को बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. या जैविक फफूंदनाशक ट्राइकोडरमा विरिडी 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. विटावैक्स 1 ग्राम प्रति कि. ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

2. तना गलन :– पत्तियां बदरंग हुए बिना गिर जाती हैं। भूमि की सतह पर सफेद फफूंद तने को चारों ओर से घेर लेता है तथा बाद में पिण्ड से दिखाई पड़ते हैं। हालांकि ग्रसित पौधों की रस वाहिकी में कोई भद्दापन नहीं दिखाई देता। अधिक वर्षा और फसल की अधिक बढ़वार की दशा में इस रोग के आने की अधिक सम्भावना होती है।

3. जल गलन :– इस रोग का प्रकोप फसल की अंकुरण अवस्था में या सिंचित क्षेत्रों में जब फसल बड़ी होती है, तब होता है। भूमि की सतह के पास पौधे के तने पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते है। ग्रसित पौधों के तने व पत्तियां हल्के पीले रंग के हो जाते हैं। जड़ गल जाने के कारण पौधा खींचने पर जमीन में ही रह जाता है।

4. ऐसकोकाइटा झुलसा रोग :– इस बीमारी से पत्तों, तनों व फलियों पर हल्के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं जिनकी परिधि में हरे भूरे रंग के दायरे दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे लम्बे हो जाते हैं तथा इन पर काली धारियां काले बिन्दु के समान दिखाई देते हैं। पौधे का ग्रसित भाग जकड़ जाता है तथा धीरे-धीरे रोग सारे खेत में फैल जाता है।

5. आल्टरनेरिया झुलसा रोग :– पत्तों पर धीरे-धीरे, गोल भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। रोग बढ़ने पर ये धब्बे हल्के पीले रंग में बदल जाते हैं परिणाम स्वरूप पौधे गिर कर सूख जाते हैं।

6. ग्रे-मोल्ड :– शुरु में पत्तियां भूरे रंग में बदलने लग जाती है उपर की टहनी थोड़ी झुक जाती है जिन में फफूंद दिखाई देती है। रोग ग्रस्त टहनियां तथा तने बाद में सड़ने लगते हैं।

रोकथाम :

1. जिन खेतों में झुलसा रोग का आक्रमण रहा हो, उनमें चने की फसल न लें।

2. चने की हरियाणा चना नं. 3, सी–235 या गौरव किस्में उगाएं, क्योंकि ये किस्में झुलसा रोग के प्रति प्रतिरोधी है।

3. साफ व रोग मुक्त बीज की बुवाई करें तथा बीजगत संक्रमण से बचाव के लिये बैविस्टीन (2.5 ग्राम 1 किलो बीज) से बीज उपचार करें।

4. रोगग्रस्त पौधों तथा अवशेषों को जलाकर नष्ट कर दें।

कीटों की रोकथाम

कटुआ सुंडी : इस कीट की सूण्डी उगते हुए पौधों को तने के बीच से अथवा बढ़ते हुए पौधों की शाखाओं को काटकर नुकसान पहुचाती है।

रोकथाम : इस कीट की रोकथाम के लिए 80 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई.सी. या 50 मि.ली. साइपरमैथरीन 25 ई.सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें या 0.4 प्रतिशत फेनवलरेट पाउडर 10 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति एकड़ धूड़ें।

फली छेदक सुडी : यह चने की फसल का सबसे नुकसानदायक कीट है। इस कीट की सूण्डी प्रायः हरे रंग की होती है जो पत्तों, कलियों व फलियों (टांट) पर आक्रमण करती है तथा फलियों में बन रहे दानों को खा कर नष्ट कर देती है।

रोकथाम : इस कीट की रोकथाम के लिये 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 80 मि.ली. फेनवलरेट 20 ई. सी. या 125 मि.ली. साइपरमैथरिन 10 ई. सी. या 150 मि.ली. डैकामैथरिन 2.8 ई. सी. या नोवालुरान (रिमोन) 10 ई.सी. 150–200 मि.ली. या 400 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. को 100 लीटर पानी में मिला कर प्रति एकड़ छिड़काव करें तथा 15 दिन बाद दोहराएं।

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9–ए, अजीत नगर,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 98151–04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 90410–14575

वर्ष : 01 अंक : 12
तिथि : 10-11-2025

सम्पादक
परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड
डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly
'KHETI SANDESH' Printed at **Drishti Printers,**
Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market,
Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and
published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar,
Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com
Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

कैसे संवारे नाजुक फूलों को

फूल सुंदरता, प्रेम और शांति के प्रतीक है फूल कुदरत का एक अद्भुत करिश्मा है। सृष्टि में प्रभु ने सभी कृतियों में सबसे खूबसूरत फूल को ही बनाया है। फूल उद्यान की आत्मा है और मनुष्य को यह प्रकति का संदेश देते है। हमारे देश मे फूलों को बहुत पवित्र माना जाता है और मन्दिरों में आमतौर पर पूजा अर्पण के लिए इनका उपयोग किया जाता है। फूलों से हमारा सदियों से घनिष्ठ सबंध रहा है और इनका उपयोग सभी प्रकार के उत्सवों तीज त्यौहारों, शादी ब्याहों और सामाजिक समारोहों में अनिवार्य सा हो गया है।–

इस संबंध में कवि दामोदर अग्रवाल ने लिखा है–

फूल देखते ही उड़ जाते मन के सारे रोग।
जादू सा पैदा होता है, खुश हो जाते है लोग।
एक प्यार का झरना सा झरने लगता झर–झर।
हमें दिखा दो जो तुम कुछ भी फूलों से सुन्दर।।
सच मानों, हम मानेंगे आभार जिंदगी भर।

फूल अपने सौन्दर्यात्मक मूल्य के अतिरिक्त आर्थिक उपयोग की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। मगर जरूरत है सही साज–संवार की। यूं भी फूल बड़े नाजुक होते है। भले ही यह बात शायर ने कही है मगर अब वैज्ञानिक भी मानते है कि फूलों की सही समय एवं विधि से कटाई/तुड़ाई और इन्हे तुड़ाई के बाद सहेजकर रखने व बेचने से घर की आन्तरिक सुन्दरता के साथ–साथ अच्छी आमदनी भी ले सकते है।

फूलों के प्राकृतिक सौन्दर्य को लम्बे समय तक बनाए रखने के उपाय

1. फूल अतिशीघ्र नाशवान प्रकृति के होते है। इनकी कटाई या तो जल्दी सुबह या फिद देर शाम के समय, जब तापमान कम हो, करनी चाहिए। प्रातः के समय काटे हुए फूल अधिक तरोताजा रहते हैं, यद्यपि शाम के समय काटे हुए फूलों मे सर्वाधिक कार्बोहाइड्रेट का संचय होता है जो कि फूलों की सस्योतर दीर्घायु निर्धारित करता है।

2. फूलों को काटने के लिए तेज धारदार चाकू या सिकेटियर का प्रयोग करें, ताकि उसके वाही उत्तकों को किसी तरह की क्षति न पहुँच पाए।

3. काटने के तुरन्त बाद सभी पुष्पों को किसी पानी के पात्र में पुष्प वृंत की ओर से रखते रहे।

4. जिन पुष्प वृन्तों से दूध (लेटैक्स) निकलता हो, उनको कटे भाग की ओर से लगभग एक मिनट तक हल्के उबलते हुए पानी में डूबो कर लेटैक्स वाहिनियों को बन्द कर लें।

5. अब आप इन पुष्पों को जिस पात्र में रखना चाहते हो उसको अच्छी तरह से धोकर, स्वच्छ पानी भरें।

6. वे फूल जिनकी

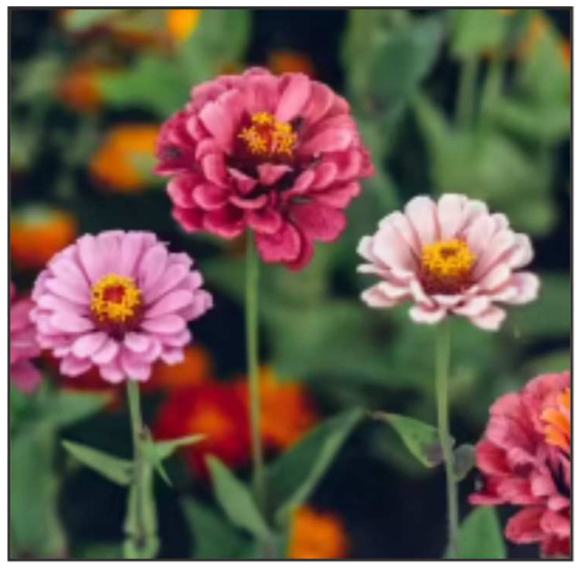

डंडियां सख्त होती है, उन पर प्रायः कोणीय चीरा लगाना चाहिए, जिससे उनकी सतह चिकनी बनी रहे और फूलों में पानी का अवशोषण अच्छी तरीके से हो सके।

7. फूलों को काटते समय यह ध्यान रखे कि उसका तना क्षतिग्रस्त ना हो, क्योंकि इस कारण तने से उसका रस निकलना शुरू हो जाता है जो सूक्ष्म जीवों को आमन्त्रित करता है, और ये सूक्ष्म जीव अन्ततः तने को क्षतिग्रस्त कर देते है अतः केवल उन्ही फूलों को काटना चाहिए जिनकी डंडी कम सख्त हो।

8. पुष्प वृंत पर लगी पत्तियों को हटा लें, केवल ऊपर की ओर एक या दो पत्ती रखें, क्योकि पत्तियां हटाने से वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है, जिससे फूल अधिक दिनों तक ताजा बने रहते है।

फूलों की कटाई की सर्वोतम अवस्था

फूलों की गुणवत्ता केवल अच्छी किस्म तथा कीमत प्रभावित उत्पादन व्यवस्था पर ही निर्भर नही करती, परन्तु यह उपयुक्त सस्योत्तर प्रबंधन व्यवस्था पर भी निर्भर करती है। इनमे सबसे महत्वपूर्ण है कटाई की अवस्था। फूलों को मुख्यतः उस समय तोड़ना चाहिए, जब वे पूरी तरह से काटने के लिए तैयार हो जाए, लेकिन कुछ फूलों को खिलने से पहले ही काट लिया जाता है या फिर उस समय काट लिया जाता है। जब पुष्पिकाओं में रंग दिखने लगे या पंखुड़ियां आधी या पूरी खुली हो। कुछ फूलों को यदि बहुत जल्दी काट लिया जाए तो वे कटाई के बाद में खुलेंगे भी नहीं और यदि खुल भी जाए तो उनकी गुणवत्ता कम होगी।इसी तरह जिन फूलों की कटाई देर से की जाए तो वे जल्दी ही नष्ट हो जाएंगे। इसलिए कटाई की उपयुक्त अवस्था का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। सामान्यतया कटाई का सही समय पौधे की प्रजाति, किस्म, मौसम, मण्डी की दूरी तथा उपभोक्ताओं की पसंद पर निर्भर करती है।

तालिका : फूलों को काटने की सर्वोत्तम अवस्था

फूल का नाम :– फूल काटने की सर्वोत्तम अवस्था

गेंदा :– जब फूल पूरी तरह से खिल जाए

ग्लेडियोलस :– जब सबसे नीचे की एक या दो फ्लोरेट रंग दिखाने लग जाए

कारनेशन :– पंखुड़ियां पूरी तरह खुल जाए (पेंटब्रश की तरह)

गुलदाउदी :– फूल आधे से अधिक खिल चुका हो

लिलियम :– जब पहली कली रंग दिखाने लग जाए

गुलाब :– कली का कसाव ढीला पड़ने पर

रजनीगंधा :– जब नीचे वाले एक दो जोड़े पुष्पक खिलने लग जाए

जरबेरा फूल के एक दो रे–फ्लोरेटस पूरी तरह से खुल जाए

डहेलिया :– फूल के रे–फ्लोरेटस पूरी तरह से खुल जाए

एंटीरहाइनम :– नीचे के 4–5 फूल खिल जाने पर

स्टाक :– नीचे के 4–5 फूल खिल जाने पर

ऐसे बढ़ाएं फूलों की आयु

फूलों की तुड़ाई/कटाई उपरान्त आयु निम्नलिखित साधारण विधियों द्वारा आसानी से बढ़ाई जा सकती है।

1. कटाई उपरान्त फूलों से खेत की उष्मा को कम करने के लिए उन्हें ठण्डी हवा, ठण्डे पानी से उपचारित करके रखना चाहिए।

2. फूलों की ताजगी को 50–60 डिग्री फारेनहाइट तापमान पर अधिक समय तक बरकरार रख सकते हैं।

3. जो फूल काटने, भंडारण या परिवहन के बाद मुरझाने लगते है। उनको वापिस लाने की विधि का कठोरण करते है। इसके लिए पानी में जीवाणुरोधी पदार्थ डाले जाते है तथा उसे सिट्रिक अम्ल से अम्लीय बनाया जाता है। इस घोल मे कोई भी क्लेदक जैसे ट्वीन–20 (0. 01–01 प्रतिशत) आदि डाला जाता है। इस घोल में फूलों को कुछ समय तक रखा जाता है।

4. गुलदस्ते के पानी में एक चम्मच चारकोल का चूरा डालकर भी फूलों को लम्बे समय तक तरोताजा रखा जा सकता है।

5. जो फूल एथिलीन गैस के प्रति संवेदनशील हैं, उन्हें डिब्बो में एथिलीन स्क्रबर जिनमें पोटेशियम परमैगनेट नामक रसायन का प्रयोग करके उनकी आयु को बढ़ाया जा सकता है।

6. कुछ पुष्पीय फसलें जैसे गुलदाउदी, लिलियम, अल्स्ट्रोमेरिया इत्यादि को यदि प्रकाशरहित वाहन में मण्डी में भेजा जाए तो उनकी पत्तियां पीली पड़ जाती है, इसलिए जिस वाहन में इन्हें मण्डी में भेजा जा रहा है। उनमें कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए।

7. कंपोजिटी कुल के

फूलों का गुदस्ता बनाते समय, फूलदान के पानी में एक चम्मच चीनी मिला दें तो फूल अधिक दिनों तक ताजा बने रहते हैं।

8. ग्लेडियोलस की पुष्पदंडिका को यदि 2 प्रतिशत चीनी का घोल तथा जीवाणुनाशक घोल में डूबोकर रखा जाए तो इन्हें काफी समय तक तरोताजा रख सकते है इसी प्रकार जरबेरा के फूलों को 5 प्रतिशत सुक्रोज के घोल में रखना चाहिए।

9. अपरिपक्व/अर्धविकसित पुष्प कलियों को पूर्ण रूप से खिलने के लिए कुछ फूलों जैसे गुलाब, कारनेशन, ग्लेडियोलस, गुलदाउदी इत्यादि में जीवाणुनाशक, चीनी एवं हार्मोन के घोल जैसे जिब्रेलिक अम्ल, बैन्जाईल एडिनिन का प्रयोग किया जाता है।

हमारे देश में आलू सबसे महत्वपूर्ण सब्जियों में से एक है। अगर उन्नत किस्में, रोग मुक्ति बीज ओर उपयुक्त उत्पादन पद्धतियों को अपनाया जाए, तो इस की उपज और क्वालिटी में वृद्धि कर सकते हैं।

आलू के खरपतवारों, बीमारियों और कीटों का सफल प्रबंधन

आलू सब्जियों में सब से ज्यादा उपयोग में आता है। इस को सब्जियों का राजा भी कह सकते है। इस में भरपूर मात्रा में पोष्टिक तत्व जैसे प्रोटीन, कारबोहाइड्रेट वसा, आइरन, कैल्शियम और विटामिनस 'ए' और 'सी' होते हैं।

हमारे देश में आलू सबसे महत्वपूर्ण सब्जियों में से एक है। अगर उन्नत किस्में, रोग मुक्ति बीज ओर उपयुक्त उत्पादन पद्धतियों को अपनाया जाए, तो इस की उपज और क्वालिटी में वृद्धि कर सकते हैं।

बीच उपचार

बीज उपचार प्रत्येक फसल में एक महत्वपूर्ण शुरूआत है। सही बीज उपचार/उपचार स्वस्थ फसल का आधार होता है। आलू के बीज उपचार के लिए 3 प्रतिशत बोरिक अम्ल/मोनसेरन आदि दवाईयों की सिफारिश की जाती है। इस से काले धब्बे/धफड़ी रोग के लिए उपचार किया जाता है।

खुराकी तत्व

आलू की फसल में खादों का बहुत महत्व है। उपयुक्त खादों का प्रयोग मिट्टी में जांच के आधार पर करना चाहिए। खादों के उपयोग के अतिरिक्त शीघ्र बढ़ने हेतु बायोविटा दानेदान एक प्रकृतिक कारबनिक उत्पाद है। इस में 61 तत्वों की एसी पूंजी है, जो फसलों के संपूर्ण विकास और बढ़ावे के लिए प्रत्येक इन्जाइम, अमीनो अम्ल, मिनरलस, मैटाकस और सूक्ष्म तत्वों की कमी को पूरा करती है। बायोविटा दानेदार का उपयोग आलू की बुवाई के समय अथवा बुवाई के 10-15 दिन के भीतर करें। इस से पौधों की जड़े मजबूत होती है और उन में मिट्टी के तत्व लेने की सक्षमता बढ़ जाती है। बायोविटा दानेदान 8 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करें। बायोविटा द्रव्य 200 मि. ली. प्रति एकड़ का प्रथम प्रयोग बुवाई के 20-25 दिनों के अंतराल पर करें और दूसरा उपयोग 40-45 दिनों के बाद करें। बायोविटा द्रव्य 300 मि.ली. का उपयो प्रति एकड़ के हिसाब से करें।

खरपतवारों नियंत्रण

आलूओं में चौड़ी पत्ती, घास वाले खरपतवारों का जमाव हो जाता है। धान वानी भूमि में कई वार आलू की बुवाई के बाद भी धान पैदा हो जाता है। इन खरपतवारों में प्रमुख है-गुल्ली डंडा, बाथू, मोथा, चौलाई, इट-सिट आदि। इन खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण करने के लिए निम्नलिखित खरपतवार नाशकों की सिफारिश की जाती है।

1. एट्राजीन 200 ग्राम पहले पानी के बाद, परन्तु खरपतवार पैदा होने से पहले प्रयोग करें। इस के प्रमुख ब्रांड सोलारो और एट्राटाफ हैं।

2. मैट्रीबूजिन 100-150 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से पहले पानी के बाद, परन्तु खरपतवार पैदा होने पर। इस से पैदा हुआ धान भी नष्ट हो जाता है। इस के प्रमुख ब्रांड सनकोर और टाटा मेटरी हैं। मैट्रीब्यूजिन को आलू की फसल में पहली या दूसरी सिंचाई के बाद, खरपतवार 2-4 पत्तियों के हो जाए और खेत में काफी नमी हो एवं आलू के पौधे 2-4 सैं.मी. से बड़े न हो।

3. पैराक्वाट 500-750 मि. ली प्रति एकड़ के हिसाब से उस समय छिड़काव करें, जब 5-10 प्रतिशत तक आलू पुंगर जाएं और खरपतवार भी पैदा हो जाएं।

बीमारिया :

अगेता झुलस रोग :- पत्तियों पर भूरे धब्बे पड़ जाते हैं, जो प्राय: बड़े होकर पूरे खेत में फैल जाते हैं। इन पौधों पर गोल धारी नजर आजी है। इस से आलू पर दुष्टप्रभाव पड़ता है। यह बीमारी मिट्टी द्वारा और बीज में भी होती है। बीमारी से मुक्ति आलू बोएं। इस के नियंत्रण हेतु मैनीपैब 300 ग्राम एम 45 500 ग्राम कल्चर 600 ग्राम या 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से प्रयोग करें।

पछेता झुलस रोग :- इस बीमारी के साथ आलूओं की बहुत क्षति होती है। यह रोग पत्तों और तने पर अनियमित/ब ...... जिन आलूओं पर इस का प्रभाव पड़ा हो वे भंडार गृह में सड़ जाते हैं। नम मौसम इस रोग के फैलने में सहायक होता है। यह बीमारी बीमार आलूओं में भी फैलती है। अगर मौसम बादलों वाला हो अथवा रूक-रूक कर वर्षा होती रहे, तो पछेता झुलस रोग लगने की संभावना ज्यादा होती है। इस के नियंत्रण के लिए रोग मुक्ति आलू बोएं। झुलस रोग से मुक्ति किस्में बोएं। आलू ऊची मेढ़ों पर बोएं।

इस के नियंत्रण के लिए 30 दिनों की फसल पर बीमारी के आने से पूर्व कल्लच 600 ग्राम या 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। अगर बीमारी के लक्षण दिखाई देने लग जाएं, तो लूरिट 200 ग्राम सेबेपेब 300 ग्राम का घोल बनाकर स्प्रे करें। इस के नियंत्रण हेतु कल्लच, सेनीपेब और लूरिट आदि फफूंदनाशकों का प्रयोग करें।

आलू के काले धब्बे :- यह बीमारी शीतग्रह में हो जाती है। काले धब्बे वाले आलू इस बीमारी के लिए जिमेंदार हैं। इस के चलते पौधे झुलस जाते हैं। जड़ और तना काले हो जाते हैं। इस के नियंत्रण हेतु बीज उपचार करके बोएं।

विषाणु रोग :- इस से पत्ते मुड़ जाते हैं या चुरढ़-मुरड़ और मटमैले हो जाते हैं। पौधों का बढ़ावा नहीं होता और इन के पत्ते गहरे हरे रंग के हो जाते हैं। कई बार आलू लमूतरे से हो जाते हैं। विषाणु रोग चेपा फैलाता है। इस लिए विषाणु रोग वाले पौधे को जड़ समेत उखाड कर खेत से दूर गहरे गड्ढे में दबा देने चाहिए और चेपे के नियंत्रण के लिए जम्बों 80 मि.ली. मैक्सिमा 50 ग्राम टटामिड 80 मि.ली., कोनफीडोर 80 मि.ली.प्रति एकड़ के हिसाब से स्प्रे करें।

कीट :

चेपा :- चेपा मैदानी क्षेत्रों में दिसंबर के शुरू से जनवरी के शुरू में आता है। परन्तु अधिकतम संख्या फरवरी से मार्च मे माह में होती है। इन के नियंत्रण के लिए बुवाई से 30-40 दिन बाद जम्बों 80 मि.ली. मैक्सिमा 50 ग्राम, प्रति एकड़ के हिसाब से स्प्रे करें अथवा आवश्यकता हो, तो 55-60 दिनों बाद ऊपर बताई गई दवाइयों में से एक का स्प्रे करें। ध्यान रखें, कि स्दैव बदल-बदल कर दवाएं प्रयोग करनी चाहिए।

सफैद सुंडी (वहाइट ग्रब):- यह कीट आलूओं में छेक कर देता है। जिस से आलू की क्वालिटी पर दुष्टप्रभाव पड़ता है। इस का नियंत्रण करने के लिए फोराटोस्स 5 किलोग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से मिट्टी चढ़ाने से पहले छिट्टा दें।

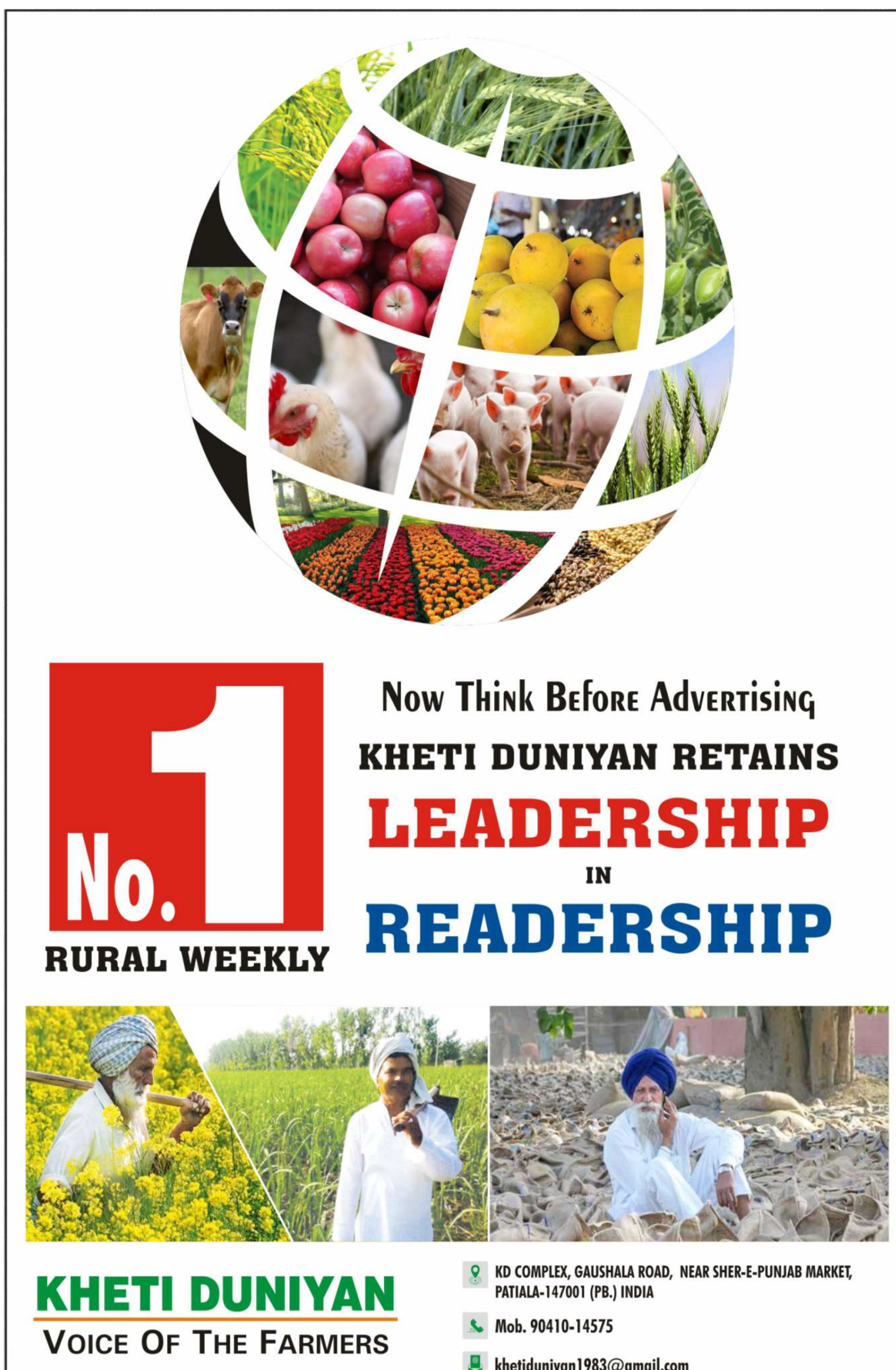

मटर की आधुनिक खेती

रेषू भरद्वाज एवं डॉ. शिखा सिंह एवं डॉ. एम.के. सिंह,
एग्रोनोमी विभाग, बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, कांके रांची (झारखंड)

भारत में मटर को दाल और सब्ज़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है। सर्दियों के मौसम में उगाई जाने वाली फसलों में मटर का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें केवल प्रोटीन तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं वरन् इसमें

विटामिन, फास्फोरस तथा लौह तत्व भी काफी मात्रा में उपलब्ध होते हैं। देश भर में इसकी खेती व्यापारिक स्तर पर की जाती है। उत्तर भारत की पहाड़ियों में मटर की ग्रीष्म और पतझड़ ऋतु की फसलें भी उगाई जाती हैं और इन मौसमों में उगाई गई मटर का कुछ भाग अप्रैल से नवम्बर के महीनों में मैदानी इलाकों में भी उपलब्ध रहता है। इसकी खेती मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब और हरियाणा में होती है। मटर को विभिन्न प्रकार की जलवायु में उगाया जाता है, परन्तु अत्याधिक गर्मी इसकी खेती के लिए हानिकारक है।

जलवायु एवं मिट्टी : मटर कम तापमान के लिए अनुकूलित है। पौधे की वृद्धि के लिए 13 डिग्री सैल्सियस और 18 डिग्री सैल्सियस बीच का तापमान अच्छा होता है तथा अंकुरण के लिए 15-22 डिग्री सैल्सियस तापमान अच्छा होता है। मटर की फसल के लिए अधिक जीवांश वाली पोटाश से भरपूर दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। मटर किसी भी भुरभुरी, अच्छी जल निकास वाली, पपड़ी मुक्त भूमि पर उगाई जा सकती है। मिट्टी का पी.एच. 6.0-7.5 मान के बीच होनी चाहिए। जलजमाव फसल को खराब कर देता है।

किस्में :

1. अगेती किस्म : आर्केल :- यह झुर्रीदार बीज वाली अगेती किस्म है। पौधे बौने, हरे रंग के मज़बूत और ऊंचाई में 35-45 सैंटीमीटर होते हैं। फूल सफेद व फलियां आकर्षक गहरे रंग की व 8 सैंटीमीटर लम्बी होती हैं। इनमें 7-8 गहरे रंग के मीठे दाने भरे होते हैं। बीज जब पूरी तरह पक जाते हैं, तो हल्के हरे-पीले रंग के हो जाते हैं। बुवाई के 55-60 दिन के बाद फलियों की पहली तुड़ाई होती है। हरी फलियों की औसत उपज 100-130 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है और बीज की पैदावार 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

2. मध्यम किस्म : बोनविले :- मध्यम लंबाई वाली, दोहरी फलियों युक्त, झुर्रीदार बीज वाली किस्म है। 55 से 60 दिनों में फल आते हैं। फलियां हल्के हरे रंग की, सीधी और लगभग 9 सैंटीमीटर लम्बी होती हैं। दाने मीठे और गहरे हरे रंग के होते हैं। बुवाई के 85-90 दिनों के अंदर मटर की फसल तैयार हो जाती है। फलियों की उपज 100 से 120 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है और बीज 12 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर बैठती है।

लिंकन : यह मटर की मध्य मौसमी किस्म है, जिसके पौधे बौने, मजबूत और पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। फलियां गहरे हरे रंग की लम्बी और सिरे पर हल्की सी मुड़ी हुई होती हैं, जिनमें 8 से 10 दाने होते हैं और दाने मीठे होते हैं। पहाड़ी इलाकों में बोने के लिए किस्म अधिक उपयुक्त है। पहली तुड़ाई बुवाई के 85-90 दिनों के बाद की जा सकती है।

भारत में उगाई जाने वाली मटर की किस्में : रचना, बी. आर.-12, अपर्णा, हरभजन, जवाहर मटर, जे.सी.-141, बोनविले, हरा छोला

बीज दर : पिछेती किस्मों के लिए 70-75 किलोग्राम और अगेती किस्मों के लिए 100 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर किन्तु आर्केल जैसी किस्मों के लिए 125 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार : मटर का बीजोपचार एफ.आई.आर. के सिद्धांत पर करें। पहले एफ का मतलब है फफूंदीनाशक : बाविस्टिन 2 ग्राम / किलोग्राम बीज अथवा थिरम 2 ग्राम/किलोग्राम बीज अथवा ट्राइकोडरमा विरीडी 5 ग्राम / किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने के 24 घंटे के बाद आई (कीटनाशी) क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 8 मिलीलीटर / किलोग्राम बीज से उपचारित कर लें। फिर दो दिन सुखाने के बाद एक पैकेट (2000 ग्राम) राइज़ोबियम कल्चर से 10 किलोग्राम बीज उपचारित कर बीज बोएं।

बुवाई : अगेती किस्में, जैसे आर्केल मध्य अक्तूबर से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक बोई जा सकती है। मध्य मौसमी किस्में, जैसे बोनविले और लिंकन अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह से नवम्बर के मध्य तक बोई जा सकती है। पिछेती किस्में नवम्बर के अन्त तक बोई जा सकती है।

लगाने की दूरी : अगेती किस्मों में कतार की दूरी 30 सैंटीमीटर और मध्य मौसमी और पछेती किस्मों के लिए 45 सैंटीमीटर दूरी रखी जाती है। पौधे से पौधे की 5-10 सैंटीमीटर उपयुक्त है।

खाद एवं उर्वरक : * बुवाई से 10-15 दिन पहले खेत की तैयारी करते समय गोबर की खाद 20 टन प्रति हैक्टेयर और किसान खाद, सी.ए.एन. 225 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर अथवा यूरिया 60 से 65 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर डालें। इसके साथ-साथ 420 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट एवं 100 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से दें।

* बुवाई के समय 10 किलोग्राम बेंटोनाईट सल्फर का प्रयोग करें।

* पहली निराई-गुड़ाई के बाद 25 किलोग्राम कैल्शियम नाइट्रेट का प्रयोग करें।

* फलियों की हर तुड़ाई के बाद एन.पी.के. 19:19:19 का 1 किलोग्राम मात्रा 150-200 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।

सिंचाई : * पहली सिंचाई बुवाई के 15 दिन बाद करनी चाहिए।

* यदि खेत में नमी कम हो तो 2-3 सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फूल आने और फलियों के भरने के समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : फसल की बुवाई से पहले और बाद में पौधे उगने से पहले 900 लीटर पानी में 1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से लिन्यूरान छिड़कने से सभी सदाबहार घासों (दूब) एवं खरपतवारों की रोकथाम हो जाती है। इस उपचार के बाद 3 से 4 सप्ताह तक सिंचाई नहीं करनी चाहिए। एम.सी.ई.; टोपोटॉक्स अथवा 2,4-डी, एम्युटॉक्स 0.84 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करने से सदाबहार चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर काबू पाया जा सकता है। छिड़काव धूप वाले दिन ही जब हवा ना चल रही हो, किया जाना चाहिए। इस उपचार के 10-11 दिनों बाद तक फसल की सिंचाई नहीं करनी चाहिए। ध्यान रहे छिड़काव के वक्त खेत में पर्याप्त नमी हो। छिड़काव लिए कट अथवा फ्लैट फैन नोज़ल का प्रयोग करें। छिड़काव करते समय आगे से पीछे की ओर चलें, जिससे छिड़काव किए गए स्थान पर पैर न पड़े।

कीट प्रबंधन :

1. मटर की पत्ती का भेदक :

लक्षण : मटर की पत्तियों पर इसके लार्वा का आक्रमण होने से पत्तियों पर सफेद रंग की टेढ़ी-मेढ़ी नालियां बन जाती है और पौधों की बढ़वार रुक जाती है।

प्रबंधन : 0.05 प्रतिशत मिथाइल पैराथियान का छिड़काव करने से इस कीट की रोकथाम की जा सकती है। यदि इसका प्रकोप दोबारा दिखाई पड़े तो इस उपचार को 15-20 दिन बाद दोहराना चाहिए।

2. माहू :

लक्षण : यह कीड़ा पत्तियों तथा रसदार स्थानों से रस चूसता है। इसके बदले में ये चिपचिपे तरल पदार्थ का भारी मात्रा में स्त्राव करते है, जिससे काली फफूंदी आकर्षित होती है। इसके कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया बुरी तरह प्रभावित होती है। माहू का आक्रमण जनवरी के बाद होता है।

प्रबंधन : माहू का प्रकोप होने पर 0.05 प्रतिशत मैटासिस्टॉक्स का घोल छिड़कें। 15-20 दिनों के बाद यदि आवश्यक हो तो दोबारा छिड़काव करें।

3. फली छेदक :

लक्षण : यह कीट फलियों के रास्ते छेद करके फली में प्रवेश करके दानों को खाकर हानि पहुंचाता है।

प्रबंधन : फसल पर 0.25 प्रतिशत कार्बोरिल का छिड़काव करके इस बेधक की रोकथाम की जा सकती है। इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि फलियां इस छिड़काव से पहले तोड़ी जाएँ अथवा छिड़काव के 10 दिन के बाद ही तोड़ी जाएं।

रोग प्रबंधन

पाऊडरी मिल्ड्यू/चूर्णी रोग :

लक्षण : पत्तियां, तने शाखाएं तथा फलियां बुकनी जैसे पदार्थ से ढंक जाती हैं। इसका भीषण असर उस मौसम में होता है, जबकि दिन और रात के तापमान में काफी अंतर होता है तथा भारी ओस गिरती है। यह बीमारी पछेती पकने वाली किस्मों को अधिक प्रभावित करती है। इस रोग में पत्तियों के ऊपर सफेद पाऊडर (चूर्ण) जैसा कवक (फफूंद) दिखाई देता है।

प्रबंधन : जैसे ही यह बीमारी दिखाई पड़े फसल पर प्रति हैक्टेयर 0.3 प्रतिशत वाले 3 ग्राम गंधक के फफूंदीनाशकों को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें और हर सात दिन बाद यह छिड़काव दोहराएं। दूसरे फफूंदीनाशक जैसे कैराथेन, बाविस्टिन का छिड़काव 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से किया जा सकता है।

झुलसा रोग :

लक्षण : यह फफूंदजनित रोग है। इस रोग के लक्षण फूल निकलने के पूर्व पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देते हैं। साथ ही फूल पर भी गहरे भूरे रंग के धब्बे बनकर उसे सुखा देते हैं, जिससे फलियां बनती ही नहीं या सूख जाती हैं।

प्रबंधन : फसल को अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में या नवम्बर में बोएं, क्योंकि इस समय बोई गई फसल साधारणतयः झुलसे के आक्रमण से बच जाती है। सितम्बर या अक्तूबर के शुरू में बोई गई फसल को इस बीमारी से सबसे अधिक नुकसान पहुंचता है।

रतुआ रोग :

लक्षण : इस रोग में पत्तियों तथा तनों में नारंगी रंगके फफोले पाए जाते हैं।

प्रबंधन : 500 ग्राम प्रति एकड़ टीकेएस-मैंको (मैंकोज़ेब) 150-200 लीटर पानी में घोलकर लक्षण दिखाई देते ही छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो तो 7-10 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

कटाई तथा भण्डारण : सब्ज़ी के उद्देश्य से फलियों के उपयोग के अनुसार ही मटर को तोड़ा जाता है। जब फलियों का रंग गहरे से हल्के रंग में बदल रहा हो तथा वे अच्छी प्रकार भर गई हो तथा सख्त न हो, तभी उन्हें तोड़ना चाहिए। फलियां तोड़ने के दोरान पौधे को सावधानी से पकड़ना चाहिए, ताकि इसमें और फलियां लग सकें। यदि फलियां तोड़ते समय बेलें टूट गई हो तो शेष फलियां समुचित रूप से विकसित नहीं होंगी।

बोई गई मटर की फसल की पूर्ण पकने पर कटाई की जाए। साफ-सुथरे खलिहान में इसकी मड़ाई करके दाना निकालें।

उपज : साधारणतः अगेती किस्में 80 से 100 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हरी फलियां देती हैं। मध्य मौसमी तथा पिछेती किस्म 100 से 120 क्विंटल प्रति हैक्टेयर से अधिक की पैदावार देती हैं।

गेहूं की उन्नत खेती

गेहूं की खेती विश्व के प्रायः हर भाग में होती है। संसार की कुल 23 प्रतिशत भूमि पर गेहूं की खेती की जाती है। गेहूं विश्वव्यापी महत्व की फसल है। मुख्य रूप से एशिया में धान की खेती की जाती है, तो भी विश्व के सभी प्रायद्वीपों में गेहूं उगाया जाता है। विश्व में सबसे अधिक क्षेत्रफल में गेहूं उगाने वाले प्रमुख तीन राष्ट्र – भारत, रशियन फैडरेशन और संयुक्त राज्य अमेरिका हैं। गेहूं उत्पादन में चीन के बाद भारत तथा अमेरिका का क्रम आता है।

उपयुक्त जलवायु क्षेत्र : गेहूं मुख्यतः एक ठंडी एवं शुष्क जलवायु की फसल है। अतः फसल बोने के समय 20 से 22 डिग्री सैल्सियस बढ़वार के समय इष्टतम ताप 25 डिग्री सैल्सियस तथा पकने के समय 14 से 15 डिग्री सैल्सियस तापक्रम उत्तम रहता है। तापमान से अधिक होने पर फसल जल्दी पक जाती है और उपज घट जाती है। पाले से फसल को बहुत नुकसान होता है। बाली लगने के समय पाला पड़ने पर बीज अंकुरण शक्ति खो देते हैं और उसका विकास रुक जाता है। छोटे दिनों पत्तियां और कल्लों की बाढ़ अधिक होती है, जबकि दिन बढ़ने के साथ-साथ बाली निकलना आरम्भ होता है। इसकी खेती के लिए 60-100 सैंटीमीटर वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं। पौधों की वृद्धि के लिए वातावरण में 50-60 प्रतिशत आर्द्रता उपयुक्त पाई गई है। ठंडा शीतकाल तथा गर्म ग्रीष्मकाल गेहूं की बेहतर फसल के लिए उपयुक्त माना जाता है। गर्म एवं नम जलवायु गेहूं के लिए उचित नहीं होती, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में फसल में रोग अधिक लगते हैं।

भूमि का चयन : गेहूं सभी प्रकार की कृषि योग्य भूमियों में पैदा हो सकता है, परन्तु दोमट से भारी दोमट, जलोढ़ मृदाओं में गेहूं की खेती सफलतापूर्वक की जाती है। जल निकास की सुविधा होने पर मटियार दोमट तथा काली मिट्टी में भी इसकी अच्छी फसल ली जा सकती है। कपास की काली मृदा में गेहूं की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है। भूमि का पी.एच. मान 5 से 7.5 के बीच में होना फसल के लिए उपयुक्त रहता है, क्योंकि अधिक क्षारीय या अम्लीय भूमि गेहूं के लिए उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : अच्छे अंकुरण के लिए एक बेहतर भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। समय पर जुताई खेत में नमी संरक्षण के लिए भी आवश्यक है। वास्तव में खेत की तैयारी करते समय हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि बुवाई के समय खेत खरपतवार मुक्त हो, भूमि में पर्याप्त नमी हो तथा मिट्टी इतनी भुरभुरी हो जाए, ताकि बुवाई आसानी से उचित गहराई तथा समान दूरी पर की जा सके। खरीफ की फसल काटने के बाद खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल (एमबी प्लेऊ) से करनी चाहिए, जिससे खरीफ फसल के अवशेष और खरपतवार मिट्टी में दब कर सड़ जाएं। इसके बाद आवश्यकता अनुसार 2-3 जुताईयां देशी हल - बखर या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा देकर खेत समतल कर लेना चाहिए।

उन्नत किस्में : फसल उत्पादन में उन्नत किस्मों के बीज का महत्वपूर्ण स्थान है। गेहूं की किस्मों का चुनाव जलवायु, बोने का समय और क्षेत्र के आधार पर करना चाहिए।

गेहूं की प्रमुख उन्नत किस्मों की विशेषताएं

1. रतन : इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित यह किस्म सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 112 दिन में पकती है। दाना गोल होता है। सूखा व गेरूआ रोधक किस्म है, जो औसतन 19 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

2. अरपा : इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय द्वारा विकसित यह किस्म देर से बोने के लिए सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ के लिए उपयुक्त है। यह किस्म 112 दिन में पकती है। दाना अम्बर रंग का होता है। अधिक तापमान, गेरूआ रोग व कटुआ कीट रोधक किस्म है, जो औसतन 23-24 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

3. नर्मदा-4 : यह पिसी शरबती किस्म, काला और भूरा गेरूआ निरोधक है। यह असिंचित एवं सीमित सिंचाई क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसके पकने का समय 125 दिन है। इसकी पैदावार 12-19 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इसका दाना शरबती चमकदार होता है। यह चपाती बनाने के लिए विशेष उपयुक्त है।

4. एन.पी.-404 : यह काला और भूरा गेरूआ निरोधक कठिया किस्म असिंचित दशा के लिए उपयुक्त है। यह 135 दिन में पक कर तैयार होती है। पैदावार 10 से 11 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना बड़ा, कड़ा और शरबती रंग का होता है।

5. मेघदूत : यह काला और भूरा गेरूआ निरोधक कठिया जाति असिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। इसके पकने का समय 135 दिन है। इसकी पैदावार 11 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना एन.पी.-404 से कड़ा होता है।

6. हाईब्रिड-65 : यह पिसिया किस्म है, जो भूरा गेरूआ निरोधक है। यह 130 दिन में पकती है। इसकी पैदावार असिंचित अवस्था में 13 से 19 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना, शरबती, चमकदार, 1000 बीज का भार 42 ग्राम होता है।

7. मुक्ता : यह पिसिया किस्म है जो भूरा गेरूआ निरोधक है। असिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। यह 130 दिन में पकती है। इसकी पैदावार 13-15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना शरबती लम्बा और चमकदार होता है।

8. सुजाता : यह पिसिया (शरबती) किस्म काला और भूरा गेरूआ सहनशील है। असिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। यह 130 दिन में पकती है। इसकी पैदावार

13-17 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना शरबती, मोटा और चमकदार होता है।

9. सोनालिका : यह गेरूआ निरोधक, अंबर रग की, बड़े दाने वाली किस्म है। यह 110 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। देर से बोने के लिए उपयुक्त है। धान काटने के बाद ज़मीन तैयार कर बुवाई की जा सकती है। इसकी पैदावार 30 से 35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

10. कल्याण सोना (एच. डी.एम.-1593) : इसका दाना चमकदार, शरबती रंग का होता है। यह किस्म 125 दिन में पक जाती है। पैदावार प्रति हैक्टेयर 30 से 35 क्विंटल तक होती है। गेरूआ रोग से प्रभावित यह किस्म अभी भी काफी प्रचलित है।

11. नर्मदा-112 : यह पिसिया (शरबती) किस्म है, जो काला और भूरा गेरूआ निरोधक है। असिंचित एवं सीमित सिंचाई वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसके पकने का समय 120-135 दिन है। इसकी पैदावार 14-16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। इसका दाना शरबती चमकदार और बड़ा होता है। यह चपाती बनाने के लिए विशेष उपयुक्त है।

12. डब्ल्यू.एच.-147 : यह बौनी पिसी किस्म काला और भूरा गेरूआ निरोधक है। सिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। बालें गसी हुई मोटी होती हैं। इसका पकने का समय 125 दिन होता है। इसका दाना मोटा शरबती होता है। इसकी पैदावार 40 से 45 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

13. एच.डी.-4530 : यह बौनी कठिया किस्म काला और भूरा गेरूआ निरोधक है। सिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। बाले गसी हुई और मोटी होती है। इसका पकने का समय 130 दिन होता है। इसका दाना मोटा, शरबती और कड़क होता है। इसकी पैदावार 35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

14. शेरा (एच.डी.-1925) : देर से बोने के लिए यह जाति उपयुक्त है। यह गेरूआ निरोधक है। यह कम समय 110 दिन में पक जाती है। इसका दाना आकर्षक होता है। इसकी पैदावार लगभग 30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

15. जयराज : इसकी ऊंचाई 100 सैंटीमीटर है। यह जाति 115 दिन में पकती है। इसके दाने शरबती मोटे (1000 दानों का भार 49 ग्राम) व चमकदार होते हैं। यह गेरूआ प्रतिबंधक सिंचित अवस्था के लिए उपयुक्त है। यह किस्म दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक बोई जा सकती है। इसकी पैदावार 38 से 40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।

16. जे.डब्लू.-7 : यह देर से तैयार (130-135 दिन) होने वाली किस्म है। बीज शरबती, मुलायम से हल्के कड़े (1000 बीज का भार 46 ग्राम) होते हैं। रोटी हेतु उत्तम, सी-306 से अधिक प्रोटीन होता है। इसकी औसत उपज 23-25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

गेहूं की नवीन उन्नत किस्म

1. जे.डब्लू.-1106 : यह मध्यम अवधि (115 दिन) वाली किस्म है, जिसके पौधे सीधे मध्यम ऊंचाई के होते हैं। बीज का आकार सिंचित अवस्था में बड़ा व आकर्षक होता है। शरबती तथा अधिक प्रोटीन युक्त किस्म है, जिसकी औसत उपज 40-50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

2. अमृता (एच.आई. -1500) : यह शरबती श्रेणी की नवीनतम सूखा निरोधक किस्म है। इसका पौधा अर्द्ध सीधा तथा ऊंचाई 120-135 सैंटीमीटर होती है। दाने मध्यम गोल, सुनहरा (अम्बर) रंग एवं चमकदार होते है। इसके 1000 दानों का वज़न 45-48 ग्राम और बाल आने का समय 85 दिन है। फसल पकने की अवधि 125-130 दिन तथा आदर्श परिस्थितियों में 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उपज देती है।

3. स्वर्णा (एच.आई. -1479) : समय से बोने हेतु मध्य प्रदेश की उर्वरा भूमियों के लिए शीघ्र पकने वाली गेरूआ निरोधक किस्म है। गेहूं का दाना लम्बा, बोल्ड, आकर्षक, शरबती जैसा चमकदार व स्वादिष्ट होता है। इसके 1000 दानों का वज़न 45-48 ग्राम होता है। फसल अवधि 110 दिन है। इस किस्म से 2-3 सिंचाईयों से अच्छी उपज ली जा सकती है। गेहूं की लोक-1 किस्म के विकल्प के रूप में इसकी खेती की जा सकती है।

4. हर्षित (एचआई-1531) : यह सूखा पाला अवरोधी मध्यम बौनी (75-90 सैंटीमीटर ऊंचाई) शरबती किस्म है। इसके दाने सुडौल, चमकदार, शरबती एवं रोटी के लिए उत्तम है, जिसे सुजाता किस्म के विकल्प के रूप में उगाया जा सकता है। फसल अवधि 115 दिन है तथा 1-2 सिंचाई में 40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर से अधिक उपज देती है।

5. मालव शक्ति (एच. आई.-8498) : यह कम ऊंचाई वाली (85 सैंटीमीटर) बौनी कठिया (ड्यूरम) किस्म है। यह नवम्बर-दिसम्बर तक बोने हेतु उपयुक्त किस्म है। इसका दाना अत्यन्त आकर्षक, बड़ा, चमकदार, प्रोटीन व विटामिन ए की मात्रा अधिक, अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। बेकरी पदार्थ, नूडल्स, सिवैयां आदि बनाने के लिए उपयुक्त है। बाज़ार भाव अधिक मिलता है तथा गेहूं निर्यात के लिए उत्तम किस्म है। इसकी बौनी नवम्बर से लेकर दिसम्बर के द्वितीय सप्ताह तक की जा सकती है। इसकी फसल लोक-1 से पहले तैयार हो जाती है। इससे अच्छी उपज लेने के लिए 4-5 पानी आवश्यक हैं।

6. मालवश्री (एच.आई. -8381) : यह कठिया गेहूं की श्रेणी में श्रेष्ठ किस्म है। इसके पौधे बौने (85-90 सैंटीमीटर ऊंचाई), बालियों के बालों का रंग काला होता है। यह किस्म 4-5 सिंचाई में बेहतर उत्पादन देती है। इसके 1000 दानों का वज़न 50-55 ग्राम एवं उपज क्षमता 50-60 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है।

7. राज-3077 : गेहूं की ऐसी नई किस्म है, जिसमें अन्य प्रजातियों की अपेक्षा 12 प्रतिशत

शेष पृष्ठ 8 पर

शेष पृष्ठ 7 की

गेहूं की उन्नत खेती

अधिक प्रोटीन पाया जाता है। इसे अम्लीय एवं क्षारीय दोनों प्रकार की मिट्टियों में बोया जा सकता है।

बीजोपचार : बुवाई के लिए जो बीज इस्तेमाल किया जाता है, वह रोग मुक्त, प्रमाणित तथा क्षेत्र विशेष के लिए अनुशंसित उन्नत किस्म का होना चाहिए। इसके अलावा रोगों की रोकथाम के लिए ट्राइकोडरमा की 4 ग्राम मात्रा 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम के साथ प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज शोधन किया जा सकता है।

बुवाई का समय : गेहूं रबी की फसल है जिसे शीतकालीन मौसम में उगाया जाता है। भारत के विभिन्न भागों में गेहूं का जीवन काल भिन्न-भिन्न रहता है। सामान्य तौर पर गेहूं की बुवाई अक्तूबर से दिसंबर तक की जाती है तथा फसल की कटाई फरवरी से मई तक की जाती है। जिन किस्मों की अवधि 135-140 दिन है, उनको नवम्बर के प्रथम पखवाड़े में व जो किस्में पकने में 120 दिन का समय लेती है, उन्हें 15-30 नवम्बर तक बोना चाहिए। गेहूं की शीघ्र बुवाई करने पर बालियां पहले निकल आती हैं तथा उत्पादन कम होता है, जबकि तापक्रम पर बुवाई करने पर अंकुरण देर से होता है। प्रयोगों से यह देखा गया है कि लगभग 15 नवम्बर के आसपास गेहूं बोये जाने पर अधिकतर बौनी किस्में अधिकतम उपज देती है। अक्तूबर के उत्तरार्द्ध में बोयी गई लंबी किस्मों से भी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। असिंचित अवस्था में बोने का उपयुक्त समय बर्षा ऋतु समाप्त होते ही मध्य अक्तूबर के लगभग है। अर्द्धसिंचित अवस्था में जहां पानी सिर्फ 2-3 सिंचाई के लिए ही उपलब्ध हो, वहां बोने का उपयुक्त समय 25 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक है। सिंचित गेहूं बोने का उपयुक्त समय नवम्बर का प्रथम पखवाड़ा है। बोनी में 30 नवम्बर से अधिक देरी नहीं होनी चाहिए। यदि किसी कारण से बोनी विलंब से करनी हो, तब देर से बोने वाली किस्मों की बोनी दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक हो जाना चाहिए। देर से बोयी गई फसल को पकने से पहले ही सूखी और गर्म हवा का सामना करना पड़ जाता है जिससे दाने सिकुड़ जाते है तथा उपज कम हो जाती है।

बीज दर एवं पौध अंतरण : चुनी हुई किस्म के बड़े-बड़े साफ, स्वस्थ और विकार रहित दाने, जो किसी उत्तम फसल से प्राप्त कर सुरक्षित स्थान पर रखे गए हों, उत्तम बीज होते हैं। बीज दर भूमि में नमी की मात्रा, बोने की विधि तथा किस्म पर निर्भर करती है। बोने गेहूं की खेती के लिए बीज की मात्रा देशी गेहूं से अधिक होती है। बोने गेहूं के लिए 100-120 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर तथा देशी गेहूं के लिए 70-90 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर की दर से बोते हैं। असिंचित गेहूं के लिए बीज की मात्रा 100 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर व कतारों के बीच की दूरी 22-23 सैंटीमीटर होनी चाहिए। समय पर बोये जाने वाले सिंचित गेहूं में बीज दर 100-125 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर व कतारों की दूरी 20-22.5 सैंटीमीटर रखनी चाहिए। देर वाली सिंचित गेहूं की बुवाई के लिए बीज दर 125-150 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर तथा पंक्तियों के मध्य 15-18 सैंटीमीटर का अंतरण रखना उचित रहता है। बीज को रात भर पानी में भिगो कर बोना लाभप्रद है। भारी चिकनी मिट्टी में नमी की मात्रा आवश्यकता से कम या अधिक रहने तथा बुवाई में बहुत देर हो जाने पर अधिक बीज बोना चाहिए। मिट्टी के कम उपजाऊ होने या फसल पर रोग या कीटों से आक्रमण की संभावना होने पर भी बीज अधिक मात्रा में डाले जाते हैं।

प्रयोगों में यह देखा गया है कि पूर्व-पश्चिम व उत्तर-दक्षिण क्रास बुवाई करने पर गेहूं की अधिक उपज प्राप्त होती है। इस विधि में कुल बीज व खाद की मात्रा, आधा-आधा करके उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम दिशा में बुवाई की जाती है। इस प्रकार पौधे सूर्य की रोशनी का उचित उपयोग प्रकाश संश्लेषण में कर लेते हैं, जिससे उपज अधिक मिलती है। गेहूं में प्रति वर्गमीटर 400-500 बाली युक्त पौधे होने से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

बीज बोने की गहराई : बौने गेहूं की बुवाई में गहराई का विशेष महत्व होता है, क्योंकि बौनी किस्मों में प्राकुंरचोल की लम्बाई 4-5 सैंटीमीटर होती है। अत: यदि इन्हें गहरा बो दिया जाता है, तो अंकुरण बहुत कम होता है। गेहूं की बौनी किस्मों की गहराई 3-5 सैंटीमीटर रखते है।। देशी (लम्बी) किस्मों में प्रांकुरचोल की लम्बाई लगभग 7 सैंटीमीटर होती है। अत: इनकी बोने की गहराई 5-7 सैंटीमीटर रखनी चाहिए।

बुवाई की विधियां : आमतौर पर गेहूं की बुवाई चार विधियों से (छिटक कर, कूंड में चोगे या सीड ड्रिल से तथा डिबलिंग से) की जाती है। गेहूं बुवाई हेतु स्थान विशेष की परिस्थिति अनुसार विधियां प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

1. छिटकवां विधि : इस विधि में बीज को हाथ से समान रूप से खेत में छिटक दिया जाता है और पाटा अथवा देशी हल चलाकर बीज को मिट्टी से ढक दिया जाता है। इस विधि से गेहूं उन स्थानों पर बोया जाता है, जहां अधिक वर्षा होने या मिट्टी भारी दोमट होने से नमी अपेक्षाकृत अधिक समय तक बनी रहती है। इस विधि से बोये गये गेहूं का अंकुरण ठीक से नही हो पाता, पौध अव्यवस्थित ढंग से उगते है, बीज अधिक मात्रा में लगता है और पौध यत्र-तत्र उगने के कारण निराई-गुड़ाई में असुविधा होती है, परन्तु अति सरल विधि होने के कारण कृषक इसे अधिक अपनाते हैं।

2. हल के पीछे कूड़ में बुवाई : गेहूं बोने की यह सबसे अधिक प्रचलित विधि है। हल के पीछे कूंड में बीज गिरा कर दो विधियों से बुवाई की जाती है :-

(अ) हल के पीछे हाथ से बुवाई (केरा विधि) : इसका प्रयोग उन स्थानों पर किया जाता है, जहां बुवाई अधिक क्षेत्रफल में की जाती है तथा खेत में पर्याप्त नमी रहती हो। इस विधि में देशी हल के पीछे बनी कूंडो में जब एक व्यक्ति खाद और बीज मिलाकर हाथ से बोता चलता है, तो इस विधि को केरा विधि कहते हैं। हल के घूम कर दूसरी बार आने पर पहले बने कूंड कुछ स्वयं ही ढंक जाते हैं। सम्पूर्ण खेत बो जाने के बाद पाटा चलाते है, जिससे बीज भी ढक जाता है और खेत भी चोरस हो जाता है।

(ब) देशी हल के पीछे नाई बांधकर बुवाई (पोरा विधि) : इस विधि का प्रयोग असिंचित क्षेत्रों या नमी की कमी वाले क्षेत्रों में किया जाता है। इसमें नाई, बांस या चौगा हल के पीछे बंधा रहता है। एक ही आदमी हल चलाता है तथा दूसरा बीज डालने का कार्य करता है। इसमें उचित दूरी पर देशी हल द्वारा 5-8 सैंटीमीटर गहरे कूंड में बीज पड़ता है। इस विधि में बीज समान गहराई पर पड़ते है, जिससे उनका समुचित अंकुरण होता है। कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए देशी हल के स्थान पर कल्टीवेटर का प्रयोग कर सकते है, क्योंकि कल्टीवेटर से एक बार में तीन कूंड बनते है।

3. सीड ड्रिल द्वारा बुवाई : यह पोरा विधि का एक सुधरा रूप है। विस्तृत क्षेत्र में बुवाई करने के लिए यह आसान तथा सस्ता ढंग है। इसमें बुवाई बैल चलित या ट्रैक्टर चलित बीज व पित्र द्वारा की जाती है। इस मशीन में पौध अंतरण व बीज दर का समायोजन इच्छानुसार किया जा सकता है। इस विधि से बीज भी कम लगता है और बुवाई निश्चित दूरी तथा गहराई पर समरूप से हो पाती है, जिससे अंकुरण अच्छा होता है। इस विधि से बोने में समय कम लगता है।

4. डिबलर द्वारा बुवाई : इस विधि में प्रत्येक बीज को मिट्टी में छेद कर निर्दिष्ट स्थान पर मनचाही गहराई पर बोते है। इसमें एक लकड़ी के फ्रेम को खेत में रख कर दबाया जाता है, तो खूंटियों से भूमि में छेद हो जाते है, जिनमें 1-2 बीज प्रति छेद की दर से डालते हैं। इस विधि से बीज की मात्रा काफी कम (25-30 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर) लगती है, परन्तु समय व श्रम अधिक लगने के कारण उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

5. फर्ब विधि : इस विधि में सिंचाई जल बचाने के उद्देश्य से ऊंची उठी हुई क्यारियां तथा नालियां बनाई जाती है। क्यारियों की चौड़ाई इतनी रखी जाती है कि उस पर 2-3 कूंडे आसानी से बोई जा सकें तथा नालियां सिंचाई के लिए प्रयोग में ली जाती है। इस प्रकार लगभग आधे सिंचाई जल की बचत हो जाती है। इस विधि में सामान्य प्रचलित विधि की तुलना में उपज अधिक प्राप्त होती है। इसमें ट्रैक्टर चालित यंत्र से बुवाई की जाती है। यह यंत्र क्यारियां बनाने, नाली बनाने तथा क्यारी पर कूंडों में एक साथ बुवाई करने का कार्य करता है।

6. शून्य कर्षण सीड ड्रिल विधि : धान की कटाई के उपरांत किसानों को रबी की फसल गेहूं आदि के लिए खेत तैयार करने पड़ते है। गेहूं के लिए किसानों को अमूमन 5-7 जुताईयां करनी पड़ती हैं। ज्यादा जुताईयों की वजह से किसान समय पर गेहूं की बुवाई नहीं कर पाते, जिसका सीधा असर गेहूं के उत्पादन पर पड़ता है। इसके अलावा इसमें लागत भी अधिक आती है। ऐसे में किसानों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। शून्य कर्षण से किसानों का समय तो बचता ही है, साथ ही लागत भी कम आती है, जिससे किसानों का लाभ काफी बढ़ जाता है। इस विधि के माध्यम से खेत की जुताई और बुवाई दोनों ही काम एक साथ हो जाते है। इससे बीज भी कम लगता है और पैदावार करीब 15 प्रतिशत बढ़ जाती है। खेत की तैयारी में लगने वाले श्रम व सिंचाई के रूप में भी करीब 15 प्रतिशत बचत होती है। इसके अलावा खरपतवार प्रकोप भी कम होता है, जिससे खरपतवारनाशकों का खर्चा भी कम हो जाता है। समय से बुवाई होने से पैदावार भी अच्छी होती है।

क्रमशः

शेष पृष्ठ 2 की

पौष्टिकता में अव्वल है खुम्ब

हो जाता है। इस उद्योग के दिन-प्रतिदिन बढ़ने तथा जलवायु परिवर्तन का असर न होने के कारण आने वाले समय में खुम्ब उत्पादन अधिक होने की संभावना है। इसके लिए ऐसी प्रौद्योगिकयों की जरूरत पड़ेगी ताकि नुक्सान कम से कम हो तथा भारत की बढ़ती जनसंख्या की मांग को पूरा किया जा सके। ऐसा करने से घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में हमारे देश की भूमिका बहुत बढ़ जाएगी। बहुत-सी गैर-सरकारी संस्थाएं तथा उद्यमी इस उद्योग की तरफ आकर्षित हो रहे हैं, जिसके कारण उत्पादन बहुत बढ़ेगा। खुम्ब की पौष्टिकता, औषधीय गुणों एवं उपभोक्ताओं की जागरूकता के कारण इसका सेवन तेजी से बढ़ता जा रहा है। घटते संसाधनों जैसे जमीन व पानी तथा बढ़ती बेरोजगारी, कुपोषण इत्यादि की समस्या से निजात पाने के लिए यह महत्वपूर्ण उद्योग है, जिसके लिए किसी बड़ी आधारित संरचना की जरूरत नहीं होती है। कुछ लोग समूह बनाकर भी इस उद्योग को चला सकते हैं।

भारत में अनेक जलवायु जैसे शीतोष्ण, उपोष्ण तथा ऊष्णकटिबंधीय होने के कारण विभिन्न प्रकार की खुम्बें उगाई जा सकती हैं। गुणवत्तापूर्ण भोजन तथा बेराजगारी की समस्या को सुधारने के साथ-साथ पर्यावरण से जुड़े मुद्दों को भी खुम्ब उत्पादन करे सुलझाया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग, खासकर युवाओं, को इस उद्योग की तरफ आकर्षित कर उत्पादन को बड़े स्तर पर बढ़ाया जा सकता है। घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खुम्ब के व्यापार के लिए आवश्यक है कि उत्पादक गुणवत्तापूर्ण खुम्ब का उत्पादन करें, जिसमें कीटनाशक अवशेष व अन्य हानिकारक तत्व न हों। खुम्ब के असाधारण पौष्टिक व औषधीय गुणों के कारण आने वाले समय में यह दैनिक आहार का मुख्य घटक बनेगा। इससे कुपोषण व अनेक विकारों तथा व्याधियों का नियंत्रण करने में सहायता मिलेगी।

चीकू में कीटों का प्रबंधन कर उत्पादन बढ़ाएं

डॉ. अभिषेक शुक्ला, कीट विज्ञान विभाग, न.म. कृषि महाविद्यालय, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी (गुजरात)

चीकू (मेनिंकारा जपाटा) हमारे देश के कुछ भागों में उगाए जाने वाला प्रमुख स्वादिष्ट फल है, जिसे लोग बड़े ही शौक से खाते हैं।

चीकू का संबंध सपोटिएसी कुल से है। ये भारत में उगाया जाने वाला प्रमुख फल है। चीकू के सफल उत्पादन में अनेक कारक जिम्मेदार हैं, इनमें समय-समय पर होने वाले नाशीकीटों का प्रकोप प्रमुख है। चीकू पर लगभग 25 प्रकार के नाशीकीटों का प्रकोप होता है, जिनका प्रकोप चीकू की कलम की रोपणी से फल लगाने तक होता है। इन नाशीकीटों में प्रमुख निम्नलिखित हैं :

पर्ण जालक (निफोंप्टेरिक्स युजोरीफिला), हरे रंग का शल्क (कोकस विरीडस), फल मक्खी (बेक्टोसिरा डोरसोलिस बेक्टोसिरा करक्टा तथा बेक्टोसिरा जोनाटा), कलिका बेधक (ऐनार्सिया ऐक्रिसीला), धारीदार मिलीबग (फेरेसिया वेरिगेटा), मिलीबग (रोस्ट्रोकोकस ईसेरीडिस), चीकू का बीज बेधक (ट्राइमेलेटिस मार्जीरियस) आदि।

ये कीट चीकू को बड़ी भारी क्षति पहुंचाते हैं, जिससे उत्पादन के साथ-साथ गुणवत्ता में भी भारी कमी आती है। प्रस्तुत लेख में चीकू के इन्हीं नाशीकीटों के विषय में जानकारी दी जा रही है, जो चीकू उत्पादकों के लिए उपयोगी साबित होगा।

चीकू की फल मक्खी (बेक्टोसिरा डोर्सोलिस, बेक्टोसिरा करक्टा तथा बेक्टोसिरा जोनाटा) : फल मक्खी की मादाएं आधे अथवा पूर्ण पके फलों की बाहरी त्वचा पर अपने अंडरोपक की मदद से अंडे देती है। मादा फल मक्खी अपने जीवन काल के दौरान प्रयोगशाला में 3000 तक अंडे देती है। मगर कुदरती अवस्था में 1200 से 1300 तक अंडे देती है और एक मादा 3 से 5 तक अंडे चीकू के फलों के अंदर देती है। अंडों से वयस्क फल मक्खी बनने में 16 दिनों का समय लगता है। पूर्ण विकसित मैगेट फलों से बाहर कूद कर ज़मीन के अंदर जा कर गहरे भूरे रंग का प्युपेरियम में बदलते हैं, जिनमें से वयस्क मक्खी बाहर निकलती है। वयस्क मक्खी 8 से 9 दिनों में समागमन योग्य हो जाती है। वयस्क मक्खी का रंग भूरा अथवा गहरे भूरे रंग का होता है, जिनके पंख चमकदार पारदर्शी तथा पैर पीले रंग के होते है। अंडों से निकलने के बाद मेगेट फलों को अंदर ही अंदर खाना शुरू कर देती है। इनसे फलों में अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रकोप से सड़न उत्पन्न होने लगती है। इसके कारण फल पेड़ों से असमय ही गिर जाते हैं। फल मक्खी से ग्रसित चीकू के फल सिकुड़ जाते है तथा आर्थिक रूप से उनका महत्व खत्म हो जाता है। चीकू की फल मक्खी का प्रकोप देश के सभी चीकू उत्पादक स्थानों पर होता है।

चीकू का बीज बेधक (ट्राइमेलेटिस मार्जीरियस) : बीज बेधक कीट की सुंडी चीकू के फलों में घुस कर बीज के एंडोस्पर्म को खाता है। अंडों से निकले प्रथम अवस्था वाली सुंडियां फलों के गुदे के अंदर सुराख बना कर बीज के एंडोस्पर्म पर आक्रमण करके उनको खाना शुरू कर देता है। बीज के अंदर इसके द्वारा बनाई गई सफेद रेखानुमा संरचना बड़ी आसानी से देखी जा सकती है, जोकि फलों के परिपक्व होने पर नहीं दिखाई पड़ता है। पूर्ण विकसित सुंडी के काले रंग के सिर को बीज में बने छिद्र से बाहर निकला हुआ देखा जा सकता है। इस कीट की सुंडियों को शुरूआती अवस्था में बाहर से नहीं देखा जा सकता है। जब ये सुंडियां पूर्ण विकसित हो जाती हैं, तब ये फल के अंदर सुरंगनुमा छिद्र बना कर उनसे पुन: इनसे बाहर निकालता है। कीट की सुंडी द्वारा बनाई गई इस सुरंग में अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रकोप से सड़न उत्पन्न होने लगती है। इसके कारण फल पेड़ों से असमय ही गिर जाते हैं। आर्थिक रूप से इस प्रकार के चीकू फलों का महत्व समाप्त हो जाता है। चीकू के बीज बेधक कीट का प्रकोप गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों में देखा गया है। कीट ग्रसित स्थानों से कीट मुक्त स्थानों पर चीकू के फलों का परिवहन करना इस कीट के धीरे-धीरे फैलाव का प्रमुख कारण है।

फल बेधक (हेटरोग्राफिस बेंगालेता) : वयस्क मादा कीट फलों अपरिपक्व फलों के आस-पास एक-एक करके अपने अंडे देती है। अंडों से निकालने पर सुंडियां फलों में घुस जाती है तथा 20 मिलीमीटर आकार की होती है। यहीं पर ये पूर्ण विकसित होकर प्यूपा अवस्था में बदल जाती है। वयस्क पतंगे हल्के भूरे रंग के होते हैं और पंख पारदर्शी भी होते हैं। ये सुंडियां फलों में घुस कर उनके अंदर का गुदा खा कर अनियमित सुरंगें बना कर उनके मिज़ोकॉर्प को खाकर फलों को खराब कर देती है। इस कीट द्वारा अंदर घुसने हेतु बनाए गए छिद्र में सुंडियों का मल-मूत्र से भर जाता है, जिससे इस सुरंग में अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रकोप से सड़न उत्पन्न होने लगती है, फलों की वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है। फल सिकुड़ जाता है, जिसके कारण फल पेड़ों से असमय ही गिर जाते हैं।

मिलीबग (रोस्ट्रोकोकस ईसेरीडिस) : इस कीट के वयस्क अंडाकार होते हैं तथा इनके शरीर पर गुलाबी मोमीय पदार्थ से ढंका हुआ है। कीट की मादा अवस्था की तीनों निंफ अवस्थाओं तथा नर की दूसरी अवस्थाओं में दो पूंछनुमा मोमीय धागाकार लंबी संरचनाएं पाई जाती हैं। इस कीट के गुलाबी रंग के निंफ तथा वयस्क दोनों ही समूहों में चीकू की पत्तियों की निचली सतह पर, कोमल तनों, प्ररोह, कोमल शाखाओं, फलों के डंठल के पास तथा फलों पर रह कर उनसे लगातार रस चूसते हैं, जिससे पौधों के ओज में कमी आने लगती है। पत्तियों का रंग हल्का हो जाता है, साथ ही साथ वे गिर जाती हैं। फलों का आकार छोटा रह जाता है और उनका वज़न हल्का रह जाता है। रस चूसने के अतिरिक्त ये कीट मधु रस (हनीड्यू) का उत्सर्जन करती है, जोकि पत्तियों पर जमा हो जाती है। इसके कारण पत्तियों पर काली फफूंदी उग जाती है, इसके कारण प्रकाश संश्लेषण क्रिया में भी विघ्न उत्पन्न होता है, फलत: उत्पादन में भारी कमी आती है। मिलीबग का प्रकोप देश के सभी चीकू उत्पादक स्थानों पर देखा जा सकता है।

हरे रंग का शल्क (कोकस विरीडस) : इस कीट के वयस्क दीर्घवृत्तीय आकार, लाल भूरे रंग के होते हैं। पूर्ण विकसित मादाएं लालिमायुक्त होती है तथा इनका शरीर गुलाबी-सफेद मोमीय पदार्थ से ढंका हुआ रहता है। इसके निंफ हल्के पीले रंग के दिखाई देते हैं, जबकि वयस्क दूर से हरे, चपटे अंडाकार कोमल शल्क होते हैं। इस कीट के निंफ तथा वयस्क दोनों ही समूहों में चीकू की पत्तियों की निचली सतह पर, कोमल तनों, प्ररोह, कोमल शाखाओं, फलों के डंठल के पास तथा फलों पर रह कर उनसे लगातार रस चूसते हैं, जिससे पौधों के ओज में कमी आने लगती है। पत्तियों का रंग हल्का हो जाता है, साथ ही साथ वे गिर जाती हैं। फलों का आकार छोटा रह जाता है और उनका वज़न हल्का रह जाता है। रस चूसने के अतिरिक्त ये कीट मधु रस (हनीड्यू) का उत्सर्जन करती है, जोकि पत्तियों पर जमा हो जाती है। इसके कारण पत्तियों पर काली फफूंदी उग जाती है एवं प्रकाश संश्लेषण क्रिया में भी विघ्न उत्पन्न होता है, फलत: उत्पादन में कमी आ जाती है। मिलीबग का प्रकोप देश के सभी चीकू उत्पादक स्थानों पर देखा जा सकता है।

चीकू के कीट सर्वेक्षण (पेस्ट सर्वेलेन्स) : चीकू के फलों की शुरूआत होते ही नाशीकीटों का सर्वेक्षण कार्य शुरू कर देना चाहिए। ये सर्वेक्षण साप्ताहिक अंतराल पर करना चाहिए। इस हेतु चीकू के बाग में इधर-उधर घूम कर प्रति एकड़ 15 से 20 पेड़ों से 250 से 300 फलों को चुन कर उनका निरीक्षण करना चाहिए। इससे फल मक्खी, बीज बेधक तथा अन्य कीटों की स्थिति का वास्तविक ज्ञान हो सके। इसके लिए फेरोमोन ट्रेप, चिपचिपे ट्रेप आदि की मदद भी लेनी चाहिए। फल मक्खी की निगरानी हेतु फल आने की शुरूआत के साथ ही मिथाईल युजीनोल ट्रेप लगा कर फल मक्खी प्रकोप पर लगातार नज़र भी बनाए रखनी चाहिए।

चीकू में नाशीकीट प्रबंधन उपाय :

1. चीकू की फसल पूरी होने के तुरंत बाद बाग की गहरी जुताई करनी चाहिए, इससे ज़मीन में पड़ी फल मक्खी, चीकू की मिलीबग की अपरिपक्व अवस्थाओं का नाश हो जाता है तथा कीटों के प्रकोप में कमी आती है।

2. कीटों की रोकथाम हेतु चीकू के पेड़ों के बीच सही दूरी रखनी चाहिए। संघन रोपण से बचना चाहिए तथा एक-दूसरे के ऊपर से निकालने वाली शाखाओं तथा आपस में स्पर्श कर रही टहनियों को भी हटा देना चाहिए।

3. चीकू के बागों की अक्तूबर माह में गहरी सिंचाई करनी चाहिए।

4. चीकू के मिलीबग, शल्क कीट तथा फल मक्खी से ग्रसित सड़े-गले फलों को एकत्रित कर उनका नाश करना चाहिए।

5. फल मक्खी के प्रकोप को कम करने हेतु चीकू के फलों को सही समय पर तोड़ लेना बहुत ज़रुरी है।

6. परभक्षी कोक्सीनेलीड भृंग, क्रिप्टोलोमस मोन्ट्रोजेरी भृंग @ 10 प्रति पेड़ अथवा @ 30 ग्रब प्रति पेड़ छोड़ने से मिलीबग तथा शल्क जैसे कीटों का जैविक नियंत्रण किया जा सकता है।

7. इसी प्रकार से मिलीबग के प्रमुख प्राकृतिक शत्रु होते हैं, जिनमें परभक्षी कोक्सीनेलीड भृंग, मिनोकाईलस सेक्समेक्युलेटस निंफ तथा वयस्क का शिकार करता है। साथ ही साथ बर्र (वास्प) (हायमेनोप्टेरा गण) के तथा परजीव्याभ, एनासिस ऐल्कोकी, एनग्रेसस डिक्टीलोपी तथा एनासिस एडविना प्रमुख है।

8. संभव होने पर ब्रकोनीड परजीव्याभ, ऐपेंटेलिस का मोचन करना चाहिए।

9. सड़े-गले फलों को समय-समय पर एकत्रित करके उनका नाश करते रहना चाहिए।

10. अनेक प्रकार के जैविक नियंत्रण कारक (प्रकृतिक शत्रु) चीकू के विभिन्न नाशीकीटों की संख्या को कम करने में अपनी भूमिका अदा करते हैं, अत: उनका संरक्षण और संवर्धन करना बहुत ही आवश्यक है।

11. फल मक्खी के नियंत्रण हेतु मिथाईल युजीनोल ट्रेप @ 10 प्रति एकड़ की दर से लगाने चाहिए।

12. कीट प्रकोप की शुरूआती अवस्था में नीम आधारित दवाएं जैसे नीम तेल या नीम बीज सत का चीकू के झाड़ पर छिड़काव करना चाहिए।

13. कीटों के प्रकोप को रोकने हेतु कीट रोग जनक फफूंदी जैसे बेवेरिया बेसीयाना या वर्टिसीलीयम लेकानी या मेटाराईजियम ऐनेसोप्ली (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

14. चीकू के बाग में अच्छी तरह से ट्राईकोडर्मा या स्यूडोमोनास (2 किलोग्राम प्रति एकड़) से उपचारित सड़ी-गली गोबर की खाद @ 8 से 10 टन प्रति एकड़ या वर्मी कम्पोस्ट @ 5 टन प्रति मिलानी चाहिए। इससे पेड़ स्वस्थ रहते हैं तथा उनकी कीटों तथा रोगों से लड़ने की क्षमता भी बढ़ती है।

इस प्रकार से चीकू की नाशीकीटों से रक्षा करके उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है तथा अधिक आर्थिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

फसल अवशेषों का वैज्ञानिक प्रबंधन

मिट्टी जीवन का आधार है। जीवांश पदार्थ मिट्टी का प्राण है। मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा मिट्टी की गुणवत्ता का परिचायक है। जिस मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, उसकी उत्पादकता भी स्वाभाविक रूप से अधिक होती है। मिट्टी ही सभी फसलों की जन्मदात्री है। अत: बचे फसल अवशेष पर पहला अधिकार मिट्टी का ही बनता है। हम सभी देख रहे हैं कि फसल अवशेषों को किसान भाई बेरहमी से खेतों में जला रहे हैं। इसका नतीजा यह है कि वायु प्रदूषण के कारण विषैला होता पर्यावरण आज अनेक गंभीर समस्याओं को जन्म दे रहा है। फसल अवशेषों को जला देने से ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन होता है। इससे वायु प्रदूषण बढ़ जाता है। तामपान में वृद्धि हो जाती है और जलवायु परिवर्तन से वर्षा चक्र प्रभावित होता है। मिट्टी की उर्वराशक्ति में ह्रास होता है। साथ ही कीड़े और बीमारी की समस्या भी बढ़ जाती है। मृदा स्वास्थ्य के मद्देनजर बचा हुआ फसल अवशेष पुन: माटी को ही मिले अत: उसे मिट्टी में दबाकर सड़ा देना चाहिए। फसल अवशेष फसल पैदा होने की जगह ही मौजूद पाया जाता है। अत: इसे ढ़ोकर कहीं ले जाने की जहमत भी नहीं उठानी पड़ती। इसे आसानी से उसी स्थान पर अर्थात उसी खेत में आधुनिक मशीनरी (कृषि यंत्रों) की मदद से भूमि में बखूबी मिला कर सड़ाया जा सकता है, जिससे मिट्टी में पोषाहार की मात्रा बढ़ने के साथ ही उसके जैविक और भौतिक गुणों में सुधार हो जाता है। यह पोषक तत्वों के पुनर्चक्रीकरण की एक अनूठी प्रक्रिया कही जा सकती है। जिसके लिए दिमाग दौड़ाने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

सघन-कृषि में न केवल जैविक खादों का प्रयोग घटा है, बल्कि मिट्टी की उर्वराशिक्त के जनत के लिए अपनाये जाने वाले परंपरागत उपायों के प्रति भी लापरवाही हुई। परिणामस्वरूप मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा में कमी हुई है। मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा

और उसकी उत्पादकता में चोली-दामन का संबंध है। अत: मिट्टी में जीवांश-पदार्थ की मात्रा बढ़ाने के लिए ठोस उपाये किये जाने चाहिए। उर्वरकों के प्रचलन से पूर्व हमारे देश की खेती जैविक खादों के बल पर होती थी। साठ के दशक के अंत में उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि की शुरूआत होते ही जैविक खादों के उपयोग को कम महत्व दिया जाने लगा। ऐसी दशा में मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा घटने के साथ ही प्रमुख, गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा में कमी हुई।

फसल अवशेषों को जलाने से प्रभावित हो रहा है पर्यावरण, कृषि और मानव व पशु-स्वास्थ्य

पर्यावरण पर दुष्प्रभाव :- फसल अवशेषों को जला देने से हमारे आसपास की आबोहवा दिन ब दिन प्रदूषित होती जा रही है। नेचर पत्रिका के एक शोध पत्र में यह परिणाम सामने आये है। जिसके अनुसार बाहरी वायु प्रदूषण से पूरे विश्व में वर्ष 2050 तक 66 लाख लोग मरने वाले है। ज्ञातव्य है कि 2010 में वायु प्रदूषण से 33 लाख लोगों की आसामयिक मृत्यु हो गई थी। लकड़ी के चूल्हे के धुएं से वर्ष 2010 में 01 लाख लोगों की मृत्यु हो गई थी। कृषि से हाने वाले वायु प्रदूषण 6 लाख लोगों की आसामयिक मृत्यु का कारण बना। भारत जैसे अत्यधिक जनसंख्या वाले देशों पर वैश्विक-तपन (ग्लोबल वार्मिग) के दूरगामी प्रभाव पड़ने की संभावना है। हिमालय के हिमखंडों के पिघलने और उपलब्ध जल के बढ़ते वाष्पोत्सर्जन के कारण उत्तर-भारत में पानी की भारी कमी हो सकती है। दक्षिणी प्रांतों के अधिकतर क्षेत्रों में तो पहले से ही सिंचाई-जल की उपलब्धता कम है और वैश्विक-तपन के कारण इसके और क्षीण होने की संभावना है। आज पूरी दुनिया जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। जलवायु में होने वाले यह परिवर्तन ग्लेशियर व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर ऊष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों तक को प्रभावित कर रहे हैं। यह प्रभाव अलग-अलग रूप से कहीं अधिक तो कहीं कम महसूस किये जा रहे हैं। जलवायु-परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है। जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है तथा इस पर निर्भर लोगों की खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा खतरें में पड़ सकती है। तूफान, सुनामी की बढ़ती समस्या, ओला, पाला नई विपत्तियों का शंखनाद कर रहा है। बीमारी की बढ़ती समस्या, सूखा की समस्या, कम होता अन्न का उत्पादन, वर्षा का आसमान वितरण, कहीं अवर्षण कहीं वर्षण, ओला, पाला, तूफान आदि की बढ़ती समस्या, का असर सबसे ज्यादा अगर किसी पर है तो वह है हमारा गरीब और असहाय किसान। इस वर्ष ऐसा देखने में आया है कि 2-4 कि.मी. के अन्दर ही वर्षण और अवर्षण की स्थिति सर्वत्र देखी गई है। ऐसी स्थिति में वर्षण क्षेत्र में आर्द्रता और अवर्षण क्षेत्र में गर्मी उत्पन्न हो गई। यह स्थिति वातावरण में डेंगू वायरस के लिए बहुत अनुकूल होता है। डेंगू वायरस का वाहक (एडीज एजिप्टी) ऐसे गर्म एवं आर्द्र वातावरण में खूब पनपता और प्रजनन करता है और लंबे समय तक डेंगू फैलाता रहता है। पेड़ कटने, फसल अवशेष जलाने से वायु मंडल में कार्बन डाई आक्साईड की मात्रा बढ़ जाती है और जलवायु परिवर्तन का असर दिखाई देने लगता है। हमें जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों की भार वहन करने की क्षमता को समझना होगा और सामाजिक और व्यक्तिगत स्तर पर इनसे निपटने का प्रयास करना होगा।

कृषि पर दुष्प्रभाव :- तापमान बढ़ने और ठंड के महीनों में कमी होन से गेहूं जैसी सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल की उत्पादकता में भारी गिरावट होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर अचानक बाढ़, सूखा व सिंचाई-जल की कमी से धान के उत्पादन पर भी दुष्प्रभाव पड़ सकता है। निस्सन्देह कृषि-उत्पादन मौसम, जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर होता है, इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा उनके स्वरूप में परिवर्तन से कृषि-उत्पादन निश्चित रूप से प्रभावित होता है। कृषि का प्रकृति से सीधा संबंध है, जल-जंगल-जमीन ही प्रकृति का आधार है और यही कृषि का भी। वायु तापमान में वृद्धि के कारण खाद्य उत्पादन प्रणालियों तथा खाद्य सुरक्षा पर पड़ने वाले अनुमानित असर से संबंधित अध्ययनों से आर्थिक प्रभावों की विशालता और व्यापकता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार भारत की कृषि उत्पादकता में कमी आने से हमारी खाद्य-सुरक्षा खतरे में आ सकती है। अनुमान है कि चारा से संबंधित आनाज का उत्पादन 2050 तक इसके उत्पादन में और भी जबरदस्त गिरावट देखी जाएगी, जबकि सबसे विश्वसनीय अनुमानों के मुताबिक, भारतीय गंगा के मैदान में गेहूं के उत्पादन में 51 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की जाएगी। उत्तरी भारत (अक्तूबर), दक्षिण भारत (अप्रैल-अगस्त) तथा पूर्वी भारत (मार्च-जून) में धान की खेती के विकास के विभिन्न चरणों में आवश्यक तापमान को लेकर दावा किया जा रहा है कि मौजूदा तापमान पहले ही नाजुक स्तर तक पहुंच चुका है। हाल में फिलहाल में किए गए एक अध्ययन में अनुमान जताया गया है कि 2050 तक खाद्य आनाजों के उत्पादन में 18 प्रतिशत तक गिरावट आ जाएगी। बढ़ता तापमान श्रम उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव डालेगा तथा भारत में खतरनाक स्तर की गर्मी से लू का बड़ा खतरा पैदा होगा और ये खतरा उन श्रमियों के लिए ज्यादा होगा, जो निर्माण कार्यों तथा कृषि गतिविधियों के कारण घर के बाहर कई-कई घंटों तक काम कर रहे होंगे। ऐसे क्षेत्रों में समुद्र तट तथा पर्वतीय पर्यटन होंगे एवं इन इलाकों में मलेरिया तथा डायरिया जैसी बीमारियों से स्वास्थ्य पर बुरा असर होगा। पॉट्सडैम इंस्टीटयूट फॉर क्लाईमेट इम्पैक्ट रिसर्च के जैकब स्कोयू और एंड्रस लीवरमैन का पूर्वानुमान है कि दुनिया भर की सरकारों अगर दृढ़ता से जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए कदम नहीं उठाती है तो 2150 से 2200 के बीच हर पांचवें वर्ष मौनसून कमजोर रहेगा। सूखे के समय में हमें और कुपोषण से जूझना पड़ेगा व बाढ़ हमारी भोजन-प्रदाई फसलों को नष्ट करेगी।

मानव-स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव :- वायु प्रदूषण जनित बीमारियों का प्रत्यक्ष संबंध जलवायु परिवर्तन से है। डब्ल्यू.एच.ओ. के आंकड़ों की माने तो 2012 में 37 लाख लोगों की मौत बाहय वायु प्रदूषण से हुई जिसमें 88 फीसद लोग कम व मध्य आय वाले देशों के थे। वहीं 43 लाख लोगों की मौत हाउसहोल्ड वायु प्रदूषण यानी घर के अंदर के वायु प्रदूषण से हुई है। इस तरह से देखा जाए तो विश्व में आठ मौतों में एक मौत वायु प्रदूषण के कारण है। पब्लिक हेल्थ इन्वायरमेंट जिनेवा, 2009 की रिपोर्ट में भारत में पर्यावरणीय कारणों से होने वाली बीमारियों की जानकारी मिलती है। डब्ल्यूएचओ द्वारा जारी इन्वायरमेंट बर्डन बीमारियों की श्रेणी के अंतर्गत जारी भारतीय प्रोफाईल में बताया गया है कि इंडोर वायु प्रदूषण से 4 लाख 88 हजार 200 मौतें व बाहय वायु प्रदूषण से 1 लाख 19 हजार 900 लोगों की जाने गई है। इतना ही नहीं, वातावरण में सल्फर आक्साइड की मात्रा बढ़ने से दिल के दौर (हार्ट अटैक) की आशंका बढ़ जाती है।

राजधानी की हवा सबसे ज्यादा कार्बन मोना आक्साईड से जहरीली है। राष्ट्रीय प्रदूषण सूचकांक (एक्यूआई) में इसे पीले रंग की कैटेगरी में रखा गया है। चिकित्सकों के अनुसार इसका सीधा प्रभाव थकान, सुस्ती के रूप में दिखाई पड़ रहा है। भले ही यह अभी तक किसी बीमारी के रूप में सामने न आया हो। केजीएमयू के हिमेटोलॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. ए. के. त्रिपाठी के अनुसार लाल रक्त कणिकाएं (आर.बी.सी.) फेफड़ों से आक्सीजन को लेकर शरीर के ऊतकों तक पहुंचती है। वहीं, कार्बन मोनो आक्साईड इसमें अवरोध पैदा कर आर.बी.सी. की आक्सीजन ले जाने की क्षमता को कम करती है। डा. त्रिपाठी कहते है कि इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि अक्सर कमरे में अंगीठी जलाकर सो जाने पर कमरे की वायु में कार्बन बढ़ जाता है, जो कि मृत्यु का कारण तक बन जाता है। वह कहते हैं कि यह सही है कि हवा में मौजूद कार्बन मोनो आक्साईड किसी रोग के रूप में सामने नहीं आई, लेकिन लोगों में थकावट, सुस्ती व कमजोरी की शिकायत इसकी वजह से हो सकती है।

प्रदूषित पर्यावरण के दुष्प्रभाव से खुद को बचाने के लिए हमें अपने शरीर को भीतर से मजबूत बनाना पड़ेगा। शरीर को वायु प्रदूषण के कुप्रभावों से बचाने का काम हमारे फेफड़ों के आस-पास मौजूद रहने वाले एंटी आक्सीडेंट्स करते है, साँस/ संबंधी परेशानियों से बचने के लिए हमें अपनी डाइट में ज्यादा से ज्यादा मात्रा में एंटीआक्सीडेंटस युक्त खाद्य पदार्थ को शामिल करना चाहिए। विटामिन-सी युक्त खाद्य पदार्थ शरीर के लिए एंटीआक्सीडेंट्स का निर्माण करते है। इसके लिए हमें अपनी डाइट में नींबू, सन्तरा, आवला, धनिया, पत्ता गोभी, चौलाई साग, सहजन आदि को शामिल करना चाहिए। विटामिन-ई क्षतिग्रस्ति मांशपेशियों को ठीक करने में अहम् भूमिका निभाता है। बादाम, सूरज मुखी के तेल, लाल मिर्च पाऊडर, काली मिर्च, लौंग, ओरिगेनो आदि से विटामिन-ई प्राप्त होता है। वायु-प्रदूषण के कारण फेफड़ों में जलन होने लगती है। इस जलन को कम करने में बीटा करोटिन की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह पोषक तत्व हमें हरी पत्तेदार सब्जियों, मूली, गाजर, आदि से प्राप्त होती है। बहुफसली खेती के फलस्वरूप फसल अवशेषों का उत्पादन काफी बढ़ा है। फसलों की कटाई का कार्य मशीन से होने की वजह से फसल की कटाई ऊपर से होती है, जिससे फसल अवशेष की काफी मात्रा खेत में छूट जाती है। इसे जलाने के बजाय मिट्टी में सड़ाना जरूरी है। वैसे भी कुल फसल अवशेष की एक तिहाई मात्रा तो मिट्टी को पुन: लौटाई ही जा सकती है।

क्रमश:

शहद की मक्खियों से सब्ज़ियों की पैदावार बढ़ाएं

प्रकाश महला, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, अबोहर
विवेक पांडेय व नवजोत सिंह बराड़,
सब्ज़ी विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना

आज की आधुनिक खेती में पर-परागित (cross-pollinated) सब्जियों की अच्छी पैदावार और गुणवत्ता बहुत ज़रूरी है। एक असरदार लेकिन अक्सर नज़र-अंदाज की जाने वाली तकनीक है – सब्ज़ी खेतों के पास शहद की मक्खियों का पालन। ये मक्खियां फूलों पर बार-बार जाती है, जिससे परागण बेहतर होता है और फल ज्यादा व अच्छे आकार के बनते हैं। जो किसान इस तकनीक को अपनाते हैं, उन्हें पैदावार में बड़ा फायदा होता है।

सब्ज़ी की खेती में परागण क्यों जरूरी है?

गोभी वर्गीय सब्जियां, प्याज़, कद्दू वर्गीय सब्जियां परागण पर निर्भर करती हैं। हवा और अन्य कीड़े भी परागण करते हैं, लेकिन शहद की मक्खियां सबसे असरदार होती हैं। ये फूलों पर बार-बार जाती है और पराग को अच्छे से एक फूल से दूसरे फूल तक पहुंचाती हैं।

शहद की मक्खियां पालने के फायदे :

*** बेहतर परागण :** फूलों पर बार-बार जाने से पराग अच्छे से फैलता है।

*** अधिक पैदावार :** फल ज्यादा बनते हैं और फसल भरपूर होती है।

*** बेहतर गुणवत्ता :** सब्जियां एक जैसे आकार की होती हैं, विकृति कम होती है।

*** कम कृत्रिम परागण की जरूरत :** कृत्रिम परागण की जरूरत घटती है, जिससे खेती टिकाऊ बनती है।

शहद की मक्खियां कैसे पालें?

जो किसान इस तकनीक को अपनाना चाहते है, उन्हें ये बातें ध्यान में रखनी चाहिए :-

*** सही प्रजाति चुनें :** यूरोपीय शहद की मक्खी (*Apis mellifera*) सब्ज़ी खेतों के लिए सबसे उपयुक्त है।

*** छत्तों की सही जगह तय करें :** खेत में 100-300 मीटर कीदूरी पर छत्ते रखें ताकि हर हिस्से में परागण हो सके।

*** मक्खियों को स्वस्थ रखें :**

– फूलों की विविधता रखें ताकि मक्खियों को पोषण मिले।

– फूल आने के समय कीटनाशक का प्रयोग न करें।

– समय-समय पर छत्तों की जांच करें ताकि बीमारी न फैले।

*** परागण की निगरानी करें :** मक्खियों की गतिविधि और फल बनने की दर पर नज़र रखें। जरूरत हो तो छत्तों की संख्या बढ़ाएं।

चुनौतियां और समाधान :

कीटनाशकों का असर : फूलों के समय रसायन का छिड़काव न करें।

शिकार और बीमारियां : नियमित जांच से समस्याओं को जल्दी पकड़ा जा सकता है।

मौसम की मार : छत्तों को छायादार और सुरक्षित जगह पर रखें।

शहद की मक्खियों का पालन एक टिकाऊ और असरदार तरीका है, जिससे सब्जियों की पैदावार और गुणवत्ता दोनों बढ़ती है। जो किसान इस तकनीक को अपनाते है, उन्हें लम्बे समय तक लाभ मिलता है। अगर छत्तों का सही ढंग से प्रबंधन किया जाए और परागण के लिए अनुकूल वातावरण बनाया जाए, तो प्राकृतिक परागण की पूरी ताकत का उपयोग किया जा सकता है, जिससे खेती भी बढ़ेगी और पर्यावरण भी संतुलित रहेगा।

गर्मी और जलवायु परिवर्तन हर साल ले रहा तकरीबन 5.5 लाख लोगों की जान

- *1990 से गर्मी से मौतों में 63 प्रतिशत बढ़ोत्तरी*
- *द लैंसेट रिपोर्ट में चेतावनी : जलवायु संकट अब स्वास्थ्य संकट*

नई रिपोर्ट के मुताबिक गर्मी से होने वाली मौतें 1990 के बाद 63 प्रतिशत बढ़ी है। 2012-2021 के बीच हर साल औसतन 5,46,000 लोगों की जान गई। यह आंकड़ा स्वास्थ्य और जलवायु परिवर्तन पर द लैंसेट ने जारी किया।

रिपोर्ट 128 विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। इसमें बताया गया है कि जलवायु निष्क्रियता के कारण हर साल लाखों लोगों की मौत हो रही है। बाढ़, सूखा और जंगल की आग जैसी आपदाएं बढ़ रही है और संक्रामक बीमारियों का खतरा भी बढ़ा है।

रिपोर्ट सी.ओ.पी.-30 सम्मेलन से पहले जारी हुई है, जो नवम्बर में ब्राज़ील में होगा। इसमें कहा गया है कि 20 मुख्य संकेतकों में से 12 सबसे उच्च स्तर पर पहुंच गए है। इससे पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन न केवल जानें ले रहा है, बल्कि स्वास्थ्य प्रणाली और अर्थव्यवस्था को भी नुकसान पहुंचा रहा है।

विशेषज्ञों की चेतावनी

विशेषज्ञों का कहना है कि अगर समय रहते कदम नहीं उठाए गए, तो स्थिति गंभीर हो सकती है। डब्ल्यू.एच.ओ. के डॉ. जेरेमी फैरर ने कहा कि, "जलवायु संकट अब स्वास्थ्य संकट बन गया है। तापमान में थोड़ी-सी बढ़ोत्तरी भी लोगों की जान और आजीविका को प्रभावित कर रही है। साफ हवा, स्वस्थ भोजन और मज़बूत स्वास्थ्य प्रणाली से लाखों जानें बचाई जा सकती हैं।"

बढ़ता तापमान और असर

रिपोर्ट में कहा गया है कि मानव गतिविधियों से निकलने वाली ग्रीनहाऊस गैसें जलवायु परिवर्तन की मुख्य वजह है। 2024 में औसत तापमान पहली बार औद्योगिक युग की तुलना में 1.5 डिग्री सैल्सियस अधिक हो गया। 2024 में आम व्यक्ति को औसतन 16 दिन खतरनाक गर्मी का सामना करना पड़ा। बच्चों और बुजुर्गों को लगभग 20 दिन गर्मी झेलनी पड़ी, जो पिछले 20 सालों की तुलना में चार गुना ज्यादा है।

रोग और खर्च

जलवायु परिवर्तन से संक्रामक बीमारियों का जोखिम बढ़ा है। डेंगू फैलाने वाले मच्छरों की सक्रियता बढ़ी है। 2023 में सरकारों ने 956 अरब डॉलर जीवांश्म ईंधन पर खर्च किए, जो जलवायु-संवेदनशील देशों की मदद से तीन गुना अधिक है। 15 देशों ने अपने पूरे स्वास्थ्य बजट से अधिक धन जीवांश्म ईंधन पर खर्च किया।

बारिश, सूखा और जंगल की आग

दुनिया के 64 प्रतिशत हिस्सों में 1961-90 और और 2015-24 के बीच भारी बारिश वाले दिनों में बढ़ोत्तरी हुई, जिससे बाढ़ और भूस्खलन का खतरा बढ़ा। 2024 में 61 प्रतिशत वैश्विक भूमि क्षेत्र में अत्याधिक सूखा पड़ा, जो 1950 के औसत से लगभग तीन गुना ज्यादा है। इससे भोजन, पानी, सफाई और आर्थिक संसाधनों पर असर पड़ा। गर्मी और सूखे ने जंगल की आग का खतरा भी बढ़ाया। 2024 में जंगल की आग के धुएं से 1,54,000 लोगों की मौत हुई।

देश में अब 'नमी वाला सूखा' चिंता बना

मौनसून की चाल बदली; बारिश के बाद भी ज़मीन में नमी नहीं टिकने से फसल और जंगल पर असर

भारत में मौनसून की चाल बदल रही है और इसके साथ ही बढ़ रहा है एक नया खतरा, जिसे वैज्ञानिकों ने नाम दिया है 'पारिस्थितिक सूखा'। आई.आई.टी. खड़गपुर के वैज्ञानिकों की ताज़ा स्टडी में खुलासा हुआ है कि देश के कई इलाकों में बारिश होने के बावजूद मिट्टी में नमी नहीं टिक रही। नतीजा यह है कि फसलें कमज़ोर हो रही है, पेड़ सूख रहे है और जंगलों की हरियाली कम हो रही है। यह अध्ययन कम्युनिकेशंस अर्थ एंड एनवायरनमेंट जर्नल में प्रकाशित हुआ है। इसे राहुल कश्यप, जे. कुट्टिपरथ और विकास पटेल ने तैयार किया है। वैज्ञानिकों ने बताया कि पिछले दो दशकों में मौनसून के पश्चिम की ओर खिसकने और समुद्र के तापमान बढ़ने से यह स्थिति गंभीर हुई है।

प्रो. कुट्टिपुरथ के अनुसार, "हिमालय, पूर्वोत्तर, पूर्वी गंगा का मैदान, मध्य और दक्षिण भारत – ये सभी इलाके अब 'नमी के सूखे' की चपेट में हैं। मिट्टी और हवा दोनों में सूखापन बढ़ रहा है।" अध्ययन में यह भी पाया गया कि मौसमी शुष्कता (23 प्रतिशत) और महासागरों का गर्म होना (18 प्रतिशत) इस सूखे के मुख्य कारण हैं। इसका असर न सिर्फ कृषि उत्पादन पर पड़ेगा, बल्कि वनों की कार्बन सोखने की क्षमता और स्थानीय जलवायु संतुलन पर भी गहरा असर डालेगा।

चिंता क्यों

फसलें जल्दी सूख जाती हैं, उपज घटती है

भारत के कई हिस्सों में अब बारिश के बाद भी मिट्टी सूखी रह जाती है। यह 'नमी वाला सूखा' फसलों और जंगलों के लिए खतरा बन रहा है। जब मिट्टी में नमी नहीं टिकती, तो पौधे सही ढंग से पोषण नहीं ले पाते। इससे फसलें जल्दी सूख जाती हैं, उपज घटती है और जंगलों की हरियाली कम होती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर यह सिलसिला जारी रहा तो भारत में खाद्य संकट, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर दबाव और स्थानीय जलवायु असंतुलन जैसी बड़ी समस्याएं सामने आ सकती हैं।

गुजरात से पौधे लाकर राजस्थान में लगाए

शिक्षक की जिद ने पहली बार उदयपुर में शुरू की केले की खेती

आमतौर पर सूखे के लिए जाने-जाने वाले राजस्थान में केले की फसलें लहलहा रही है। राजस्थान के उदयपुर ज़िले में मक्का, हल्दी और स्ट्रॉबेरी जैसी फसलों की सफल खेती के बाद अब केले की खेती भी शुरू हो गई है। शहर से करीब 30 किलोमीटर दूर ओड़ा गांव निवासी शिक्षक हकराला मीणा ने ज़िले में पहली बार केले की हाईटेक खेती की शुरूआत की है।

मीणा जयसमंद क्षेत्र में शिक्षक हैं और वर्ष 2018 में हाईटेक खेती कर रहे हैं। पहले वे टमाटर की सालभर खेती करते थे, लेकिन नौकरी के चलते रोज़ाना मंडी तक पहुंचाने में परेशानी होती थी। इसके बाद उन्होंने ऑनलाइन प्रशिक्षण लेकर केले की खेती शुरू की। टमाटर की खेती में ज्यादा मज़दूरों की जरूरत पड़ती है, जबकि केले की खेती आसानी से हो जाती है। गुजरात के आनंद की नर्सरी से जी-9 वैरायटी के केले के पौधे मंगवाए। करीब एक एकड़ खेत में 1100 पौधे लगाए गए। इस साल जून में पौधे लगाए गए हैं। अगले साल अप्रैल से फसल का उत्पादन शुरू होगा।

मीणा जयसमंद क्षेत्र में शिक्षक हैं और वर्ष 2018 में हाईटेक खेती कर रहे हैं। पहले वे टमाटर की सालभर खेती करते थे, लेकिन नौकरी के चलते रोज़ाना मंडी तक पहुंचाने में परेशानी होती थी। इसके बाद उन्होंने ऑनलाइन प्रशिक्षण लेकर केले की खेती शुरू की।

मीणा ने बताया कि टमाटर की खेती में मार्केटिंग की जरूरत पड़ती है, जबकि केले की मांग ज्यादा होने से ये फसल आसानी से बिक जाती है। उनका पूरी तरह ऑर्गेनिक खेती पर फोकस है। फसल पर कोई कीट प्रकोप होने पर ऑर्गेनिक हवा का ही उपयोग करते हैं। पौधों में देशी खाद डालते हैं। हर पौधे पर मल्चिंग की गई है। बागान में पौधे से पौधे की दूरी 7-7 फीट और लाइनां के बीच की दूरी 5-5 फीट रखी गई है। केले के एक पौधे पर लगभग 35 रुपए का खर्च आया है।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें

खेती संदेश

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर

एक वर्ष में 52 अंक

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 400/- रुपए दो वर्ष 700/- रुपए

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :

90410-14575

KHETI DUNIYAN
TID - 62763351

चंदे भेजने हेतु QR कोड सकैन करें।

खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला

शिमला लवी मेले में चामुर्ति घोड़ा 84 हजार में बिका

यह अपनी मजबूती, सहनशीलता और सुंदर बनावट के लिए जाना जाता है

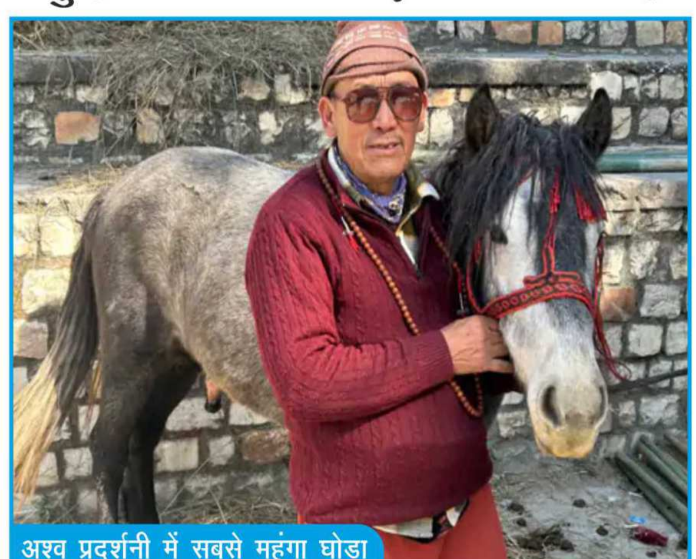

अश्व प्रदर्शनी में सबसे महंगा घोड़ा

शिमला के राम पुर में आयोजित अंतरराष्ट्रीय लवी मेले से पहले चली अश्व प्रदर्शनी के दौरान घोड़ों के पंजीकरण में बड़ी वृद्धि देखी गई। पहले दिन 65 घोड़ों का पंजीकरण हुआ था। प्रदर्शनी स्थल पर सुबह 9 बजे से ही अश्व पालक अपने घोड़ों के साथ पहुंचने लगे।

भारतीय सेना की रिमाउंट वेटरनरी कॉर्प्स (22 मोबाइल एवरी पट्टी) की टीम ने एक उपचार शिविर लगाया, वहीं ब्रूक्स इंडिया लिमिटेड ने भी अश्वों की देख-रेख को लेकर एक विशेष कैंप आयोजित किया। रविवार प्रातः साढ़े 11 बजे पशु-पालकों के लिए किसान गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस मौके पर डॉ. समर चौहान, डॉ. चंदन राणा (पशु औषधि विशेषज्ञ) और शशांक शुक्ला (भारतीय सेना एवरी पट्टी) ने अश्वों के उचित प्रबंधन, पोषण और बीमारियों की रोकथाम के बारे में विस्तार से जानकारी दी। गोष्ठी के दौरान ब्रूक्स इंडिया की टीम ने घोड़ों के खुरों की देखभाल और नाल लगाने की सही तकनीक पर लाइव डिमॉन्सट्रेशन भी प्रस्तुत किया। गोष्ठी में लगभग 100 पशु-पालकों ने भाग लिया, जिनके लिए पशु-पालन विभाग की ओर से भोजन की व्यवस्था की गई। प्रतिभागियों को 100 चिकित्सा किटें भी वितरित की गईं।

दोपहर बाद अश्वों के लिए दाना और चारा वितरित किया गया। सबसे महंगा घोड़ा लाहौल-स्पीति के ग्राम बर्र (डाकघर गुलिंग, तहसील काजा) के छेरिंग टुडूप का रहा, जिसे 84,000 रुपए में उत्तराखंड के टिहरी गढ़वाल निवासी देवेन्द्र सिंह ने खरीदा, जो अश्व प्रदर्शनी का मुख्य आकर्षण रहा। अश्व प्रदर्शनी का समापन 3 नवम्बर को हुआ। अन्तिम दिन उत्तम अश्वों का चयन, घुड़दौड़ प्रतियोगिता और गुब्बारा फोड़ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।